॥ श्रीहरिः ॥

मधुरोपासना



हनुमानप्रसाद पोद्दार

Madhuropasna

by

Hanuman Prasad Poddar

प्रकाशक

गीतावाटिका प्रकाशन

पद-रत्नाकर सेवा शोध संस्थानका प्रकल्प
पो०—गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६
फोन : (०५५१)२२८४७४२, ८८५३१४५४५२
e-mail : rasendu@yahoo.com

प्रथम संस्करण—श्रीराधाष्टमी महोत्सव, सं० २०७६ वि०
सन् २०१९ ई०

मूल्य : ३०/- तीस रुपये

नम्र-निवेदन

आज मानव जीवन का लक्ष्य 'लक्ष्य' भगवान की जगह 'भोग' हो गया है। इससे देश-दुनियामें नाना प्रकारके संकट छाये हुये हैं। इस संकट से उबरनेका पूज्य 'भाईजी' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने अमोघ उपाय बताया है—विश्वासपूर्वक भगवदाराधन। इसका उदाहरण है एक सच्ची ऐतिहासिक घटना। सन् १९६२ में चीन ने भारतपर विश्वासघातसे बर्बरतापूर्वक आक्रमण किया। देशमें संकट छा गया।

उस महान् विपत्तिके समय पूज्य भाईजीने देशवासियोंका आह्वान किया उन्होंने 'कल्याण' में निवेदन किया। इस भयानक संकटकालमें हम सर्वशक्तिमान भगवान्‌का आश्रय लेकर आध्यात्मिक साधनोंमें जुट जायें। अतएव वैदिक यज्ञ, भगवान् रुद्र, दुर्गा, गणेश और नारायण आदिकी उपासनामें लग जाना चाहिये। चण्डी-पाठ, महामृत्युंज्यके जाप, 'कल्याण' में प्रकाशित शिव-कवच और नारायण कवच आदिके पाठ और गायत्री जप पुरश्चरण आदि करने-कराने चाहिये। और कुछ न हो तो जन-जनको 'हरिः शरणम्', 'नमःशिवाय', 'गं गणपतये नमः', 'दुर्गायै नमः', 'नमो नारायणाय' आदि मन्त्रोंका अपने-अपने विश्वासके अनुसार जप तथा श्रीरामचरितमानस और वाल्मीकीय रामायणके पाठ करने-कराने चाहिये। कम-से-कम सभी लोग सर्वविघ्नविनाशक और सर्वकल्याणप्रद, भगवन्नामका जप-कीर्तन तो अवश्व करें। करोड़ों कण्ठोंसे निकलनेवाली 'हरिनाम' की पवित्र और तुमुल ध्वनिसे आकाश और दिशाएँ गूँजती रहें। सारा वातावरण नाम-ध्वनिसे भर जाय। जैन, बौद्ध, सिख आदि महानुभाव भी अपने-अपने सिद्धान्तानुसार भगवान्‌की प्रार्थना करें। जगत्‌के राष्ट्रनायकोंको सद्‌बुद्धि प्राप्त हो, जिससे विश्वका भीषण संकट टले और समस्त विश्व में शान्ति तथा प्रेमका विस्तार हो। भाईजीके इस निवेदनका अद्भुत प्रभाव पड़ा। सम्पूर्ण देशमें जगह-जगह भगवन्नाम जप, कीर्तन, प्रार्थनाएँ एवं अनुष्ठान होने लगे। हजारों हृदयोंसे

निकली प्रार्थना भगवान्‌ने सुनी।

भाईजीने कहा—'मेरा विश्वास है—उस समय देशभरमें जो देवाराधन हुआ— चीनसे त्राण पानेके लिये, उससे चीनकी बुद्धि बदली—नहीं तो रातों-रात उसकी बुद्धिमें यह क्यों आया कि युद्धको विराम दे दिया जाय। मेरा अपना विश्वास है कि यह सब भगवान्‌के आराधनका—भगवत्प्रार्थनाका प्रभाव था। भगवदाराधन, भगवत्प्रार्थना एक अमोघ उपाय है।'

स्वनामधन्य पूज्य 'भाईजी' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी अमृतवाणी को लिपिबद्ध करनेका प्रयास भगवत्कृपासे चल रहा है। इसी क्रममें यह 'मधुरोपासना' नवीनतम प्रयास है। इसमें भूलवश त्रुटियाँ हमारी अपनी है जिसे ध्यान दिलानेपर सुधारनेकी चेष्टा की जायेगी।

—प्रकाशक

विषय सूची

❖❖❖

॥ श्रीहरिः ॥

मधुरोपासना

भक्तिमें मधुर रस-माधुर्य है। जहाँपर भी किसी प्रकारकी कामनाका विष है वहाँ सम्पूर्णतया माधुर्य नहीं रहता है। वहाँ विष मिश्रित मधुरता, कटुता मिली होती है। वह वास्तविक मधुरता नहीं होती है। जीवनका सर्वथा विनाश कर देनेवाली विषय-कामनाको साथ लिये जो मधुरता होती है वह वास्तविक मधुरता नहीं होती है। यही काम और प्रेमका महान अन्तर है। यह समझनेका विषय है। जहाँपर अपने इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी वासना है, जहाँपर दूसरे किसीके द्वारा अपनेको सुखी बनानेकी कामना है, अपने मनकी इच्छा पूर्ण करनेकी कामना है वहाँ प्रेम नहीं है, माधुर्य नहीं है। वहाँ कामनाका विष साथ मिला हुआ है। इसीलिये उसका नाम काम है; चाहे उसे कोई प्रेम कहे। लोग कहते हैं कि अमुकसे हमारा बहुत प्रेम है, हम घुले-मिले हैं और उनसे हमारा बहुत काम निकलता है। हमारे प्रत्येक कार्यमें वे सहायता करते हैं। हमारी हर तरहकी विपत्तियोंका वे नाश करते हैं, हमारे हर तरहकी सम्पत्तिकी इच्छा पूर्ण करते हैं। हमें उनसे बड़ा प्रेम है। इसमें उनका प्रेम तो ठीक है और प्रेमी आदमी प्रेमास्पदकी या प्रेमास्पद प्रेमीकी सुखकी व्यवस्था न करे यह भी कोई बात नहीं। तथापि जहाँ प्रेमका यह स्वरूप है कि प्रेमास्पदसे हमारा अमुक-अमुक काम निकलता है, बहुत काम निकलता है, हमारी इच्छायें पूर्ण होती हैं, हमें सुख प्राप्त होता है इत्यादि वहाँ निर्मल प्रेम नहीं है, विशुद्ध प्रेम नहीं है। वहाँ प्रेममें कामनाका कलंक लगा हुआ है, विष घुला हुआ है। इसलिये यह प्रेमके नामपर काम है। भले

ही इसका नाम हम प्रेम रखें परन्तु यह काम है।

जहाँ केवल प्रेमास्पदकी ही चिन्ता है, जहाँ केवल अपना जीवन प्रेमास्पदके सुखकी सामग्री बन गया है वहाँ उसका नाम चाहे हम काम रखें लेकिन वह प्रेम है। हर जगह, हर क्षेत्रमें यही है। जैसे देश-प्रेम। देशका प्रेमी कौन? जिसका जीवन देशका हित बन गया वह देशप्रेमी या देशभक्त है। जो देशभक्ति या देशप्रेमके परिवर्तनमें, उसके बदलेमें अपने लिये कुछ व्यक्तिगत चाह रखता है वह विशुद्ध देशप्रेमी नहीं है। उसके अन्दर अपनी कुछ व्यक्तिगत कामना है। जहाँ व्यक्ति और देशमें स्वार्थका संघर्ष हो वहाँ यदि व्यक्तिकी कामना देशहितकी कामनापर विजय प्राप्त कर ले तो उसका यह अर्थ होता है कि वहाँ काम है प्रेम नहीं है। हर जगह, घरमें भी यही बात है। जहाँ अपने सुखकी चाह है, जहाँ अपने दु:खकी परवाह है वहाँ प्रेम नहीं काम है। और, जहाँ काम है वहाँ विष है। अन्तमें उसका फल कड़वा है इसलिये वह मधुर नहीं है।

माधुर्य-रस जिसका भक्तिमें सर्वोच्च स्थान है उस माधुर्यमें सर्वात्म निवेदन है। अर्थात् सब प्रकारसे अपना, अपने हितोंका, अपने लोक-परलोककी चिन्ताका सर्वथा परित्याग है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९/२७)

भगवान्ने कहा—जो कुछ करो वह मुझे अर्पण करते रहो, जो कुछ खाओ, दान करो, यज्ञ करो, तप करो, हवन करो वह सब मुझे अर्पण करते रहो। करके अर्पण करो यह एक बात है। दूसरी बात है समर्पितकी भावनासे नहीं बल्कि उसीका कार्य करे। एकके पास उसीका काम करनेकी बुद्धि भी न रहे और स्वाभाविक ही प्रेमास्पदके जीवनका सुख ही उसका जीवन बन जाता है वहाँ

कोई कामना नहीं रहती है। वहाँ पर किसी भी प्रकारकी कामनाका विष नहीं रहता है। यह मारनेवाला कौन है? जलानेवाला कौन है? संसारमें हमलोग छोटे कहलानेवाले और बड़े कहलानेवाले सभी रात-दिन जलते रहते हैं—मनुष्य भी और देवता भी, यह जलानेवाला कौन है? तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

'जो जारति जोर जहानहि रे'

जो सारे संसारको जबरदस्ती जला रहा है यह कौन है? यह है कामना, काम, याचकता। इसीलिये तुलसीदासजी कहते हैं—

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥

(कवितावली/उत्तर/२८)

जगत्में किसीको जाँचो मत। अगर जाँचना ही है तो श्रीजानकी-जीवन भगवान् श्रीराघवेन्द्रको जाँचो। इससे क्या होगा—'जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ'—जिनको जाँचनेसे जाचकता (याचकता) जल जायेगी जो 'जारति जोर जहानहि रे'—जो सारे संसारको जबरदस्ती जला रही है वह याचकता जल जायेगी।

संसारको जलानेवाला कौन है? संसारके प्राणियोंके हृदयमें हमेशा आगकी भट्ठी किसकी रहती है? कामना की। यह कामना जहाँ है वहाँ मीठापन—मधुरता नहीं है। भले ही मीठापन लगे परन्तु वह है खारापन। मीठापन वहाँ होता है जहाँ यह याचकता जल जल जाती है। एक प्रकारकी और ज्वाला होती है जो शीतल करनेवाली होती है। यह बड़ा सुन्दर समझनेका विषय है। विषय कामनाकी ज्वाला और भगवत्प्रेम, भगवद्दर्शनकी ज्वाला। इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। विषय-कामनाकी ज्वाला निरंतर बढ़ती रहती है। विषयोंसे कभी इसकी शान्ति नहीं होती है।

'बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय-भोग बहु घी ते'

(विनय पत्रिका/१९८)

जिस प्रकार आग ईंधन और घी डालनेसे बुझती नहीं है बल्कि भड़कती है उसी प्रकार यह कामनाकी आग विषयोंकी आहुतिसे घटती नहीं है बल्कि बढ़ती है। यह कामनाकी ज्वाला जो हमेशा जलानेवाली है वह कभी शान्त नहीं होती है। एक दूसरी ज्वाला और है जो सभी ज्वालाओंको शान्त कर देती है। वह है हृदयमें भगवान्‌को प्राप्त करनेकी या भगवत्प्रेमकी ज्वाला। यह भी ज्वाला है, आग है परन्तु यह आग शीतल करनेवाली है। क्यों? इसलिये कि जलानेवाली जो ज्वाला है वह विषय-कामकी ज्वाला है और विषय कामकी ज्वालाको जो आग जला दे वह तो सारी जलानेवाली चीजोंको उसने जला दिया।

भगवान्‌को प्राप्त करनेका उत्ताप-ज्वाला जिसके मनमें जल उठे, भगवान्‌के विरह-तापसे जिसका जीवन संतप्त हो उठे, जो भगवान्‌को पानेके लिये परम आतुर हो जाय वह तो भाग्यवान है। उसकी सारी ज्वालायें सदाके लिये शान्त हो जाती हैं। उसमें माधुर्य है। यह सिद्धान्त मान लेना चाहिये कि जिसका परिणाम मारनेवाला हो, जिसका परिणाम दुःख देनेवाला हो, जिसका परिणाम कटु हो वह अमृत नहीं है। वह खानेमें चाहे मीठा लगे। किसी लड्डू या किसी अन्य पकवानमें, बड़े मीठेमें जरा-सा संखिया मिला हुआ हो। भले ही संखियाका स्वाद न आये, स्वाद मीठा हो जाय परन्तु चूँकि उसमें संखिया है इसलिये वह मारेगा अवश्य। इसलिये वह जो मिठाई है वह वास्तविक मिठाई नहीं है। वह मधुर नहीं है। मीठा वास्तवमें कौन है? जिसका परिणाम मीठा हो। जिसके परिणामें माधुर्य हो, जिसके परिणाममें तिक्तता, कटुता, विषमयता, मारात्मकता न हो वह मधुर है।

इसलिये मधुर रसमें यह बात अच्छी तरह जान लेनेमें है कि जगत्‌का भोग-वैराग्य जहाँ पूर्णतया सम्पन्न हो चुकता है वहाँपर भगवान्‌का यह मधुर राग उत्पन्न होता है। विषयानुराग और भगवान्‌का

मधुर अनुराग यह दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। जितना भी भोगोंका मोह है, संसारके आरामकी जितनी भी चाह है उतनी ही यह भगवत्प्राप्तिमें, भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें बाधा है। इसलिये यह कहनेकी आवश्यकता हुई कि मधुर नाम सुनकरके कोई भ्रमसे, भूलसे या अन्य किसी प्रकारसे विषयोंके अनुरागको मधुर मत समझ ले। वह तो विष है और निरन्तर विष ही रहेगा।

अपने सर्वस्वका त्याग करके ही भगवत्प्रेम प्राप्त हो सकता है। श्रीगोपांगनाओंने भगवान्‌से कहा कि हम सर्वस्व त्याग करके आपके चरणोंमें आयी हैं। अब आप हमारा त्याग कैसे कर सकते हैं? यही बात है कि जो सर्वस्व त्याग करके, जो केवल भगवान्‌को ही वरण करनेके लिये, सबकुछ खोकर, सबकुछ छोड़कर आता है उसीको भगवान्‌का मधुर अनुराग प्राप्त होता है। इसलिये भगवान्‌का मधुर अनुराग प्राप्त करना जिसको अभीष्ट हो उनको पहलेसे यह बात समझ लेनी चाहिये कि उनको विषय और उनका विषयानुराग उन्हें छोड़ना ही होगा। दो चीजें साथ-साथ नहीं चल सकती— अन्धकार और प्रकाश। भगवत्प्रेम और विषयासक्ति साथ-साथ नहीं चल सकती है। जहाँ विषयासक्ति है वहाँ भगवान्‌का अनुराग नहीं होगा। और, जहाँ भगवान्‌का अनुराग है वहाँ विषयासक्ति नहीं रहेगी। यह अन्तर ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये तब ही इस मार्गमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनी चाहिये। नहीं तो **'कहीं मृत्यु फल फलता इसमें, कहीं कलंक लाभ केवल।'** कलंक लाभ न हो जाय इसलिये बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। विषयानुरागका परित्याग अत्यन्त आवश्यक है।

माधुर्य रसका यह एक प्रधान स्वरूप है कि जहाँ परिणाममें कटुताका सर्वथा अभाव हो। वह मधुर रस है। वह मधुर रस विशुद्ध है क्योंकि वहाँपर किसी भी कामनाका विष नहीं है। यह जहाँ होता है, जिसमें होता है उसका नाम गोपी है। और, जैसा होता है उसका

नाम गोपी-प्रेम है। यह समझकर ही आगे बढ़ना चाहिये।

अब इस माधुर्यके सम्बन्धमें जो विशेष बातें हैं उसको संक्षेपमें कहते हैं। एक रूप है उसका जहाँ वैधता है, जहाँ विधि है। एक विधिका माधुर्य होता है और एक अवैध माधुर्य होता है। अवैधका अर्थ विधिका भंग होना नहीं है। अवैधका अर्थ नियमोंको तोड़ना नहीं है। बल्कि वहाँ नियमोंकी आवश्यकता नहीं है। जहाँपर विधि है वहाँपर विधि मानने योग्य समाज है और जिस समाजमें जिस व्यक्तिमें विधिकी योग्यता नहीं है वहाँ उसका आचरण अवैध होता है। अवैधता दो प्रकारकी होती है। एक पागलपन होता है, महानीचताका होता है और दूसरा वह होता है जहाँपर जो विधिका साम्राज्य है उसकी सीमाके पार पहुँचे हुए लोगोंका होता है। इसलिये यह गोपीजनोंका जो अवैध मार्ग है इस माधुर्यमें विधि नहीं है। विधि नहीं है इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वहाँ विधिका जानबूझकर भंग है। वहाँ विधिसे जो अतीत क्षेत्र है उस अतीत क्षेत्रकी यह चीज है, विधिके क्षेत्रकी नहीं। यह बात समझ लेनी चाहिये। इस विषयपर फिर कभी अवसर लगा तो कहनेका विचार है। उसके कई स्तर हैं और उन स्तरोंका विशेष वर्णन है। उनके नाम हैं—स्नेह, प्रणय, मान, राग, अनुराग, भाव और महाभाव। स्नेहसे प्रारम्भ करके महाभाव तक यह प्रेमका प्रवाह जाता है। और, उसके बाद यह अनन्त प्रवाहमें विलीन हो जाता है। फिर वह प्रवाह कभी रुकता नहीं है। यहाँतक उस प्रवाहकी एक सीमा है। यहाँतक उस प्रवाहकी एक संज्ञा है। यहाँतक उस प्रवाहके लक्षणोंका निरूपण है। इसके बाद वह लक्षणातीत है। जैसे गुणातीत होता है उसी प्रकार यह लक्षणातीत होता है। वह एक अदम्य, अजस्र सुधाका प्रवाह है। जिस प्रवाहकी कोई भी इयत्ता नहीं, कोई सीमा नहीं है। जिसका कोई स्वरूप-लक्षण नहीं है। वह सर्वथा विलक्षण है, अनिर्वचनीय है और अनित्य है। भगवान् नारदने उसका स्वरूप बतलाया है—**'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्'** (ना०भ०सू०/५१) अर्थात् प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है। यह कैसा होता है? उन्होंने कहा—**'मूकास्वादनवत्'** (ना०भ०सू० ५२) जैसे गूँगा स्वादका अनुभव करता है परन्तु कह नहीं पाता है उसी प्रकार यह है। इस प्रेम-प्रवाहके पथपर महाभावके अनन्तर कुछ थोड़ा-सा और आगे चलता है तो मोदन, मादनादि भाव हैं। इनके बाद इस प्रवाहका अनन्त स्वरूप जो है वह अचिन्त्य है, अनुभवगम्य है। वह कथनीय नहीं है।

इसके लिये तैयारी करनी है। वह तैयारी क्या है? इसीपर थोड़ा-सा आज कहना है। वह तैयारी है—त्याग और वैराग्य। त्याग और वैराग्य एक ही चीज है। कुछ लोग कहते हैं कि हम वैराग्यकी बात नहीं सुनना चाहते हैं। यदि नहीं सुनना चाहते हो तो तुम प्रेमकी बातको सुननेके अधिकारी नहीं हो। विषय-विराग जहाँ नहीं है वहाँ भगवान्का अनुराग कैसे प्राप्त होगा? हमारे चित्तकी वृत्ति यदि रात-दिन विषयोंका चिन्तन करती है तो भगवान्का चिन्तन करनेवाली वृत्ति कैसे बनेगी? हमारा चित्त दिन-रात विषयोंकी बात सोचता है तो भगवान्की सोचेगा कैसे? सारे अनर्थोंकी जड़ है—विषयोंका चिन्तन। यह स्पष्ट रूपसे भगवान्ने कहा है कि—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

(गीता २/६२)

यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि सबसे पहले पतन होता है किस बातको लेकर? पतनका प्रारम्भ कहाँसे होता है? इसका उत्तर है—विषयोंके चिन्तनसे। विषयोंका चिन्तन जिसके हृदयमें है चाहे वह भगवान्के नामपर ही हो फिर वह भगवान्का चिन्तन नहीं कर सकता है। **'ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते'**—विषयोंका चिन्तन करते- करते उन्हींमें आसक्ति पैदा होगी। इसलिये सबसे पहले आवश्यकता है—विषय-विरागकी। रास्ता दूसरा है। रास्ता यह है कि एकमें विषयोंमें दुःख देख-देखकर विषयोंसे चित्त

हटाना पड़ता है और इस मार्गमें भगवान्‌में अनुराग बढ़ा-बढ़ाकर विषयोंको चित्तसे हटाना पड़ता है। यह दोनोंका अन्तर है। यह साधकोंको समझनेकी बात है।

'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्' (गीता १३/८)

विषयोंमें दुःख है, दोष है—इस प्रकार दुःख और दोष देख-देखकर विषयोंसे चित्तको हटाना। यह एक मार्ग है जहाँपर विषयोंमें सुखका बाध करे। संक्षेपमें इसके चार प्रकार हैं—१-विषयोंमें सुख नहीं, २-विषयोंमें प्रेम नहीं, ३-विषयोंमें सौन्दर्य नहीं, ४-विषयोंकी सत्ता नहीं। सबसे पहले विषयोंमें रमणीयताका बाध करें। यह कितनी सुन्दर बात है। अपने शरीरको देखिये इसमें कहाँ सौन्दर्य है आपकी कल्पनाके सिवाय। हड्डी सुन्दर है? माँस, चमड़ी, मेद, मज्जा, कफ, विष्ट और मूत्र—इसमें क्या सुन्दर है। इस शरीरमें—चमड़ेके थैलेमें यह गन्दी वस्तुएँ भरी हैं। इसमें सुन्दरता कहाँ है? हमने मनमें एक कल्पना कर रखी है कि काला रंग सुन्दर है और गोरा रंग सुन्दर है। यह भी अपनी-अपनी कल्पनाका भेद है। अफ्रीकाके एक देशमें जो सबसे ज्यादा काला होता है उसे सुन्दर मानते हैं। जिसके होंठ मोटे होते हैं उसे सुन्दर मानते हैं। इसलिये यह सुन्दरता मानव-मनकी एक कल्पना है। फिर विषयोंमें रमणीयता कहाँ है? यह मान लेते हैं कि रमणीयता नहीं है परन्तु सुख तो है। यदि सुख विषयोंमें होता तो वह हमेशा मिलता। भूख लगी हो और आप खीर खा लिये तो बड़ा सुख मिला परन्तु तुरन्त फिर कोई खीर खिलाये तो आप लड़ने लगेंगे कि मारना है क्या? इसलिये विषयोंमें सुरमणीयताका बाध करे, सुखका बाध करे और उसमें प्रेमका बाध करे। यदि घरमें आग लग गयी हो तो सबको बाहर निकालेंगे। धन भी निकालेंगे और परिवारको भी निकालेंगे। एक बच्चा यदि अन्दर रह जाय तो कहेंगे कि मैं लाख रूपये दूँगा कोई निकाल दे। अपने जाकर क्यों नहीं निकालते है? इसलिये कि प्रेम नहीं है। प्रेम होता तो अपना बलिदान करते।

इसलिये विषयोंमें रमणीयताका बाध, सुखका बाध, प्रेमका बाध और फिर सत्ताका बाध करे। स्वप्नमें जो दिखता है वह क्या है? इस प्रकार बाध करके मनको विषयोंसे हटावे। यह एक मार्ग है जो रूखा है।

दूसरे मार्गमें भी विषयोंको मनसे हटाना ही है। इसके बिना काम तो चलेगा ही नहीं। लेकिन इस मार्गपर जाना कैसे है? प्रभुके सौन्दर्य-माधुर्यमें मनको लगा-लगाकर। जब मन उसमें लगेगा तो विषयोंसे अपने आप हट जायेगा। वह ऐसी वस्तु है कि यदि उसमें रस आने लगेगा तो यह विषय- रस विरस हो जायेगा। वह सौन्दर्य कहीं आँखोंके सामने आ गया तो यहाँका सौन्दर्य सदाके लिये फीका हो जायेगा। इसलिये यह जो आराधना, उपासना है—प्रेमोपासना इसमें निश्चय ही विषय-विराग आवश्यक है परन्तु विषय-विरागके लिये रूखी चेष्टा नहीं करनी है। भगवान्‌के सौन्दर्य-माधुर्यके सामने कोई तत्त्व नहीं रह जाता। आप प्रार्थनामें सुनते हैं—

वंशीविभूषित करान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरूणविम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दु सुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

यह कहते हैं कौन? वेदान्तके परमाचार्य स्वामी मधुसूदनजी सरस्वती। गीताके बारहवें अध्यायकी टीकाका यह श्लोक है। वे कहते हैं कि इनके परे कोई तत्त्व हो तो मैं नहीं जानता। तात्त्विक लोगोंके सारे तत्त्व जिस तत्त्वमें खो जाते हैं तो क्या सारी विषयासक्ति भगवान् श्रीकृष्णकी अनुरक्तिमें नहीं खो जायेगी? परन्तु उसका स्वाद वास्तविक आना चाहिये। यह दोनों मार्ग ठीकसे समझ लेना चाहिये। इन दोनों मार्गोंमें एक चीजकी आवश्यकता है वह है विषयासक्तिका अभाव। एकमें विषयोंके दुःख-दोष देख-देखकर, विषयोंमेंसे सुख, प्रेम, सौन्दर्य और सत्ताका बाध करके विवेकके द्वारा नित्यानित्य वस्तुका विचार करके सुख-दुःखका विवेचन करके विषयोंसे चित्तको हटाना है। यह रूखा मार्ग है और दूसरे मार्गमें भगवान्‌के अप्रतिम सौन्दर्य-माधुर्यमें चित्तको आसक्त बना देना है जिससे विषयोंकी आसक्ति अपने आप दूर हो

जाय। वैराग्य तो बड़ा आवश्यक है परन्तु रूखा वैराग्य नहीं। विषयासक्ति रहते हुए भगवदासक्ति नहीं हो सकती है। परन्तु भगवान्में यदि आसक्ति हो जाय तो वह सारी विषयासक्तिको खा जायेगी।

इसमें सुख यह है कि प्रारम्भसे ही भगवान्में आसक्ति बढावें। प्रातःकाल उठें और उठनेसे लेकर रातमें सोने तक मधुर भगवान्की सेवा करता रहे। कभी उनको जगावे, फिर टहलावे, उबटन लगावे, फिर स्नान करावे, फिर श्रृंगार करावे, फिर उनको नैवेद्य दे। इस प्रकार उनकी दिनभर मधुर चर्चा चलती रहे। फिर यह मधुर सारे विषय-रागको खा जायेगा। भगवान्की जो यह सौन्दर्योपासना है, माधुर्योपासना है इसमें एक बात ध्यान रखनेकी है कि मधुर वह है जिसमें कहीं पर भी किसी प्रकारसे भी काम-विषका सम्मिश्रण नहीं है। जिसमें कामना है, जो कामनाका माधुर्य है वह अन्तमें कटुता लाता है। कामनावाला माधुर्य, कामनावाला प्रेम—प्रेम नाम होनेपर भी काम है। और, भगवत्सुखकी इच्छा करनेवाला प्रेम चाहे उसका काम नाम हो परन्तु प्रेम है। जैसे हमारी कामना है कि हमारे प्रियतम सुखी हों। यह कामना है कि हमारे प्रेमास्पदको हमारी क्रियाके द्वारा सुख मिले परन्तु यह काम नहीं है। जहाँ निजसुखकी, निजेन्द्रिय तृप्तिकी, अपने लोक-परलोकके सुखकी, अपने स्वार्थसिद्धिकी, किसी प्रकारकी, कोई भी, कहीं भी अलग कामना नहीं है; उसका नाम चाहे कामना हो परन्तु वह प्रेम है। और, जहाँ यह प्रेम है वहीं माधुर्य है।

माधुर्य-रसकी जहाँ-जहाँपर बात हो वहाँ-वहाँपर यह बात पहले ध्यान रख लेनी चाहिये कि इसमें कामनाका विष सर्वथा नहीं है। परन्तु उसमें विषय-राग भी नहीं होना चाहिये। यदि विषय-राग है, भोग-राग है तो यह प्रेम नहीं मिलेगा। फिर प्रश्न है कि यह विषय-राग छूटे कैसे? भगवान्ने इसका सीधा उपाय बताया है कि हमारे सौन्दर्यमें, माधुर्यमें मनको लगाओ। उपरोक्त श्लोकमें मधुसूदन स्वामीजीने कहा कि उसके परे कोई तत्त्व है यह मैं

नहीं जानता—'कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'। सारे तत्त्व भूल जाते हैं श्रीकृष्णके सौन्दर्यमें। श्रीकृष्णका सौन्दर्य सामने आनेपर तत्त्वज्ञोंके सारे तत्त्व भूल जाते हैं। वहाँ उनमें अनुराग होनेपर, उनके अनुरागके मार्गमें कहीं विषयानुराग रह सकता है क्या? सूर्यके प्रकाशमें कहीं अन्धकार रह सकता है क्या? रह ही नहीं सकता। इसी प्रकार भगवत् अनुरागके मार्गमें, भगवत्प्रेमके मार्गमें, इस सौन्दर्योपासनामें, माधुर्योपासनामें विषयानुराग रह नहीं सकता है। परन्तु इसमें सावधानी यह रखनी है कि जो भगवान्का सौन्दर्य-माधुर्य है वह चिन्मय है, वह दिव्य है। भगवान्का शरीर और भगवान्की आत्मा ये दो नहीं एक हैं। वहाँ देह और देहीका भेद नहीं है। वह हानोपादानरहित चिदानन्दमय भगवान्का मधुर वपु है।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

और, (रा०च०मा०/अयो०/१२६/५)

'स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि'

(श्रीमद्भा० १०/१४/२)

भगवान्का वपु पाञ्चभौतिक नहीं है। यह स्वेच्छामय है। भगवान्की इच्छा और भगवान् दो नहीं हैं। इसलिये भगवान्का शरीर अनित्य नहीं, पाञ्चभौतिक नहीं और विषयकामजनित नहीं है। अतएव जहाँ सौन्दर्य-माधुर्यकी उपासना है वहाँ समझ लेना चाहिये कि हम दिव्य भगवान्के सौन्दर्यकी उपासना कर रहे हैं। संसारके मलिन सौन्दर्यकी नहीं। यदि संसारका सौन्दर्य, संसारका माधुर्य, संसारका ऐश्वर्य हमारे मनको खींचता है तो जान लेना चाहिये कि हमारी उपासनामें कहीं न कहीं, कोई न कोई गलती है, दोष है, ऐब है और इसको निकाल देना चाहिये नहीं तो इसका परिणाम बुरा होगा। यह केवल भगवान्के साथ होता है और किसीके साथ नहीं होता है।

भगवान् ही हमारे परम प्रियतम, परम प्रेष्ठ, परम प्रेमास्पद हैं और

भगवान्‌का सौन्दर्य, भगवान्‌का माधुर्य—यही हमारी उपासनाका विषय हो। फिर यह जो सौन्दर्योपासना है, माधुर्योपासना है वह सारी प्रकृतिमें फैल जायेगा। और, यह माधुर्य फैलकर जगत्‌के कण-कणमें व्याप्त हो जायेगा। फिर सर्वत्र भगवान्‌की श्रीमूर्ति दिखायी देगी।

'जित देखूँ तित श्याममई है'

गोपियोंने कहा कि क्या करें जहाँ आँख जाती है वहीं श्यामसुन्दर दिखते हैं। प्रगाढ़ आसक्तिमें भी ऐसा होता है। कोई भी करके देख ले। यह बात मुझे कहनी नहीं चाहिये क्योंकि यह बात आत्मश्लाघा की है परन्तु ऐसा होनेपर भी यह कोई सिद्धि नहीं है। सबको हो सकती है इसलिये कहनेमें आपत्ति नहीं है। मैं शिमलापालमें नजरबन्द था। सन् १९१६ में मुझे वहाँपर सरकारने नजरबंद कर दिया था। उस समय ऐसा था कि शायद मैं यहाँसे न छोड़ा जाऊँ। अनिश्चयकी स्थिति थी। पहले तो मन थोड़ा घबराया परन्तु बादमें मन लगने लगा। मनमें आया कि अब तो भगवान्‌की आराधना ही करनी है और कुछ नहीं करना है। मेरे पास रवि वर्माका बनाया हुआ एक चित्र था भगवान् नारायण व ध्रुवका। मैं वहाँपर नारायण भगवान्‌का ध्यान करता। भगवान्‌का स्वरूप चतुर्भज था। वहाँ कोई और कार्य नहीं था जप, ध्यान और स्वाध्यायके सिवाय। पुस्तकें मेरे पास थी नहीं। यदि मेरे पास पुस्तकें आतीं तो सरकारकी अनुमतिसे आती। वहाँपर एक बंगाली पोस्टमास्टर थे। उनके पास बंगला साहित्य बहुत था। उन्होंने मुझे वह बंगला साहित्य दिया फिर मैं बंगला साहित्यका अध्ययन करने लगा और बादमें होमियोपैथी दवा बाँटनेका कार्य भी करने लगा। वहाँ मैं नारायणका ध्यान करता। पहले मैं दिनमें तीन बार करता था। प्रात:काल उठनेसे पूर्व बिस्तरपर बैठ जाता, फिर मध्याह्नमें, फिर रात्रिमें। रविवर्माके उस चित्रका ध्यान करते-करते वह मूर्ति मेरी धारणामें बद्धमूल हो गयी। और, कोई काम तो था नहीं इसलिये तीन बार तो करता ही था और भी समयमें करता था। वह धारणामें इतना बद्धमूल हो गया कि करीब छ:-सात माह बाद ही खुली आँखोंके

सामने वह चित्र आने लगा। इसमें कोई सिद्धि नहीं है। उस मूर्तिमें चित्त इतना अधिक अभ्यस्त हो गया कि वह मूर्ति चित्तमें बैठ गयी। फिर मैं उसका अभ्यास करने लगा। गाय सामने आयी तो मैं उस मूर्तिको याद करता और यह सोचता कि यह गाय भी वही है। गायकी जगह नारायण हैं तो मुझे नारायण दीखने लगते। गाय दिखनी बन्द हो जाती और उसकी जगह नारायण दिखने लगते। यह ध्यान है। कोई सिद्धि नहीं है, दर्शन नहीं है। यह केवल अभ्यासकी चीज है। आप सबलोग यह कर सकते हैं। यह बिल्कुल व्यावहारिक चीज है। अब मैं ध्यान नहीं करता हूँ परन्तु वह अभ्यास अब भी वैसा ही है। अब जब भी मैं उस नारायणकी मूर्तिका ध्यान करता हूँ और आपको देखूँ तो आप नहीं दिखते। यह केवल अभ्यासकी चीज है। अभ्याससे इस प्रकार हो सकता है। यदि प्रेम हो जाय, अनुरक्ति हो जाय और यदि भगवान्‌की कृपासे कहीं भगवान्‌की कोई झाँकी दिख जाय फिर तो कहना ही क्या है। एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि जितना हम और ध्यान करते हैं वह चीज तो वहाँ है नहीं। हमारी कल्पना ही है। यदि हम वहाँ किसी अन्यका ध्यान करें तो वह तो यहाँ है नहीं परन्तु भगवान् तो यहाँ हैं। जो सर्वत्र है, सर्वदा है, वह कहाँ नहीं है और कब नहीं है। यहाँ हम यदि गायका ध्यान करें तो यहाँ गाय है नहीं। वह हमारे ध्यानकी गाय है लेकिन यदि हम भगवान्‌का ध्यान करें तो भगवान् तो यहाँ हैं ही। अभी वह हमें ध्यानमें दिखते हैं और उनकी कृपा हो जाय तो प्रत्यक्ष दीखेंगे क्योंकि वे यहाँ हैं। उनको कहींसे आना नहीं है।

इसलिये जो यह सौन्दर्य-माधुर्यकी उपासना है यह है तो बड़ी सुन्दर, बड़ी मनोहर, बड़ी लाभदायक परन्तु यह भगवान्‌की होनी चाहिये। भगवान्‌के साथ लौकिकता किसी भी प्रकारसे कहीं भी आनी नहीं चाहिये। फिर उस सौन्दर्य-माधुर्योपासनामें कलंक आता नहीं है। वह स्वरूपभूत है, चिदानन्दमय है। इसलिये उनका माधुर्य भी चिदानन्दमय है। उनका सौन्दर्य भी चिदानन्दमय है। चिदानन्दमय सौन्दर्यका दर्शन भी चिदानन्दमय है। चिदानन्दमय सौन्दर्यकी कल्पना भी चिदानन्दमय

है और चिदानन्दमय उस स्वरूपका दर्शन करनेवाला हृदय भी चिदानन्दमय है। इसलिये वहाँ इस कामनाके कलंककी आशंका नहीं है। अगर वह चीज आ गयी तो समझ लेना चाहिये कि हमने चिदानन्दके बदलेमें किसी पाञ्चभौतिक, विनाशी, गन्दे तत्त्वकी आराधना की है। नहीं तो हमारे मनमें यह चीज आती नहीं।

ऐसा होता है कि जब किसीकी आँखोंके सामने भगवान् आते हैं तब उतनी देरके लिये उस समय वहाँ तमाम वातावरण चिदानन्दमय हो जाते हैं। उस दर्शन करनेवालेके नेत्र भी, उसका हृदय भी, उसकी सारी इन्द्रियाँ भी, उसका मन भी, उसकी बुद्धि भी, वहाँका आकाश भी, वहाँकी वायु भी चिदानन्दमय हो जाती है। जबतक भगवान् वहाँ अपने स्वरूपको प्रकट रखते हैं तबतक वहाँपर दिव्यता छायी रहती है। जब भगवान् अप्रकट हुए तो दिव्यता उनके साथ गयी। इसलिये वहाँपर उतने देरतक उसके साथ कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती है। अगर होती है तो मूलमें गड़बड़ी है। इसलिये उस माधुर्यकी उपासनामें यह देखनेकी चीज है कि कहीं मूलमें गड़बड़ी न हो जाय। मनको हमें हमेशा सावधान रखना है। चिदानन्दमय भगवान्में उसे लगाना है। और किसी वस्तुमें नहीं, किसी पदार्थमें नहीं, किसी भावमें नहीं, किसी विकारमें लगानेकी कोई कल्पना ही न हो।

इसलिये बड़ी सावधानीके साथ इस विषयको कहा गया है। जहाँपर रासपञ्चाध्यायीका प्रारम्भ होता है वहाँ प्रारम्भके श्लोकका जो पहला शब्द है वह है भगवान्। जिससे कहीं भी किसी पढ़ने-सुननेवालेके मनमें लोक न आ जाय।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०/२९/१)

योगमायाके आश्रयसे भगवान् अपने मनका निर्माण करते हैं और मनको बनाकर जो भगवान्के चाहनेवाले तत्त्व थे उन तत्त्वोंको

भगवान् आकर्षित करते हैं। उन तत्त्वोंमें कहाँ दोष है, कहाँ विकार है, कहाँ जगत् है? वे तो सारे जगत्को छोड़कर, जगत्को भूलकर एकमात्र कृष्णाकर्षित हृदया हैं। वे कृष्णाङ्गमानसा हैं। वे कृष्णमानसमयी हैं। इस प्रकारकी कृष्णचित्तमयी वे देवियाँ, वह परम तत्त्वका दर्शन करनेके लिये, सम्मिलन करनेके लिये एकत्र होती हैं। वहाँ कहाँ काम है, कहाँ गन्दगी है, वहाँ कहाँ जगत् है? वहाँ तो जगत् है ही नहीं, वहाँ विशुद्ध परममंगलमय दिव्य भगवान्का चिन्मय प्रेम-प्रवाह बह रहा है। उसमें केवल प्रेम ही प्रेम है। केवल आनन्द ही आनन्द है। और, उसकी मूल भित्ति है—सर्वस्व त्याग। बिना त्यागके प्रेमका नाम लेना भी पाप है।

जहाँपर भोगेच्छा है वहाँपर प्रेम नहीं होता है। इसलिये प्रेममें भोगका स्थान नहीं है। अपनेको भोग्य बना देना—यह अलग चीज है। अपनेको भगवान्के भोग्य बना दे। लेकिन भगवान् भोग्य नहीं बनते हैं। अपनेको भोग्य बना देनेका अर्थ है—अपना सर्वस्व समर्पण—सर्वात्म निवेदन। अपनी सारी की सारी स्थितिको, अपनी सारी वस्तुओंको, अपनी कल्पनाको सर्वथा प्रभुकी कल्पनामें समर्पित कर देना है। उनके चरणोंमें सर्वथा न्योछावर कर देना है। अपनी सत्ताको उनकी सत्तामें विलीन कर देना है।

भगवान्के तीन शब्द मुझे बहुत अच्छे लगते हैं—'**ता मनमनस्काः**', '**मत्प्राणा**' और '**मदर्थेत्यक्त दैहिकाः**'। ये तीन चीजें जो हैं वह इस भावकी प्रकाश करनेवाली हैं। 'मनस्काः'—अपना मन ही नहीं। उन्होंने अपने मनका ऐसा अभाव कर दिया कि भगवान्को उनका मन बनकरके कार्य करना पड़ा। वे भगवान्के मनवाली हो गयी थीं और मत्प्राणाः—भगवान्के प्राणोंसे अनुप्राणित हैं। भगवान्के जीवनसे वे जीवित हैं। भगवान् चाहते हैं इसलिये वे जी रही हैं। उनका जीवन अपने लिये है ही नहीं। उनका सारा प्रारब्ध और संचित कर्म समाप्त हो गया। वे तो ज्ञानशिरोमणि हैं। उनका संचित प्रारब्ध रहा ही नहीं

और उनका क्रियमाण प्रारब्ध समाप्त हो गया। तभी तो वे मत्प्राणा हैं। भगवान्‌के दिव्य प्राण उनको जीवित रखे हुए हैं। उनके कर्म उन्हें जिंदा नहीं रखे हैं। उनका अपना मनयुक्त सूक्ष्मदेह नष्ट हो गया। भगवान्‌का मन उनका मन बनकरके कार्य कर रहा है और जगत्‌के कार्य, घरके कार्य उनका अपना नहीं रहा। वह भगवान्‌का कार्य कर रही हैं। उनके अपने कार्य तो कभीके भगवान्‌के लिये परित्यक्त हो चुके—'**मदर्थेत्यक्त दैहिकाः**'।

यह साधनाका भाव है और साधनाकी सिद्धिमें यह स्वरूप बन जाता है। तीन बातें हैं—भगवान्‌के अनुसार मन बना दो। अपना मन अलग मत रखो। भगवान्‌को जीवन अर्पण कर दो। अपने लिये अपना जीवन मत रखो और जगत्‌में अपना कार्य कोई न करो। अपने कार्योंको छोड़करके केवल भगवान्‌का कार्य करो—मत्कर्मकृत। ये तीन भाव इस माधुर्य-सौन्दर्यकी उपासनामें प्रधान साधन हैं। और, सबमें यही है। किसी भी साधनमें जाइये तो अपना मन और अपने प्राण भगवान्‌को अर्पण करने पड़ेंगे। तब दिव्यता आ जायेगी मनमें भी, कर्मोंमें भी और जीवनमें भी। फिर दिव्य कर्म, दिव्य मन और दिव्य जीवन हो जायेगा जो सर्वथा दिव्यताको ही करनेवाला हो जायेगा।

भगवान्‌के सौन्दर्यकी स्मृति सर्वदा हो। एक पद है जिसमें भगवान्‌के रूपका ही वर्णन है। यह प्रार्थना भी है। प्रत्येक भक्त कर सकता है। श्रीकृष्ण और राधाका नाम न सही, आप अपने मनसे अपने इष्टका कर सकते हैं। भगवान्‌के स्वरूपका, सौन्दर्यका स्मरण कीजिये और मन-ही-मन प्रार्थना कीजिये कि ऐसे जो है वह हमारे मनमें बसें।

हे प्रियतम ! माधुर्य-सुधानिधि ! रस-सागर, प्राणोंके प्राण।
नित्य निवास करो मेरे उर-मन्दिर, निरुपम प्रेम-निधान॥
नव-नीरद-नीलाभ श्याम तन, पीत बसन वर रहा विराज।
वय किशोर, कमनीय कान्ति, सच्चिन्मय वपु, सब सुन्दर साज॥

मधुर, मनोहर, दिव्य सौरभित, अति सुकुमार अङ्ग-प्रत्यङ्ग।
अतुल रूप-रस-सिन्धु-विन्दुसे रूप-समन्वित अमित अनङ्ग॥
ललित त्रिभङ्ग, कमलदल-लोचन, मोचन-मायारचित विधान।
नित्य निवास करो०

चारु चन्द्रिका भूषित-कुञ्चित कुन्तल, मृगमद-तिलक सुभाल।
कम्बु-कण्ठ शोभित मुक्ता-मणि, तुलसी-वन-कुसुमोंकी माल॥
कौस्तुभमणि-श्रीवत्स-विभूषित वक्षःस्थल मनहरण, विशाल।
अरुणिम मधुर अधर मुरलीधर, त्रिभुवन-मोहन यशुमति-लाल॥
परमहंस मुनि-जन-मन-मोहनि सोहनि मन्द मधुर मुसकान।
नित्य निवास करो०

श्रवण-सुशोभित कुण्डल छवि अति झिलमिलात शुचि रुचिर कपोल।
चिबुक चित्तहर, प्रेम-सुधा-रस-भरे मनोहर मीठे बोल॥
उन्नत कंध, विशाल भुजा सुन्दर मृणाल-सम शोभाधाम।
नित नवीन सौन्दर्य-सुधामय मुख-सरोज मोहन अभिराम॥
प्रेमानन्द-तरंगित-विग्रह, रास-रसिक, रस-धाम सुजान।
नित्य निवास करो०

अङ्ग सकल आभरण-विभूषित, दिव्य द्युति, अति सुषमागार।
कोमल, कान्त, सुशान्त, दमन-दुख, दिव्य सुखप्रद, परम उदार॥
ब्रज-युवतीजन-मन-आकर्षक, रूप-राशि, नव नित्यकिशोर।
नन्दानन्दन, सखा-प्राणधन, जड़-चेतन सबके चितचोर॥
मेरे हृदयेश्वर, रस-पान-रसिक, शुचि करते रसका दान !
नित्य निवास करो०

(पद रत्नाकर/६१६)

❖❖❖

प्रेमप्राप्तिके उपाय

वंशीविभूषित करान्नवनीरदाभात्।
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्द नेत्रात्।
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने॥

आज शरत्पूर्णिमा है और आध्यात्मिक प्रेमके साम्राज्यमें आजका दिन बड़े महत्वका माना जाता है। जिसमें त्यागकी पराकाष्ठा होती है, उसीमें परम प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। त्याग ही प्रेमकी भित्ति है। जहाँ त्याग नहीं ग्रहण है, जहाँ देना नहीं लेना है, जहाँ उत्सर्ग नहीं ग्रहण है वहाँ प्रेम नहीं है। वहाँ या तो बहुत बड़ा स्वार्थ होता है या व्यापार होता है अर्थात् दूसरेका हित न देखकर अपने ही हितके लिये किसीके साथ अच्छा व्यवहार करना, प्रेमका व्यवहार करना, विनयका व्यवहार करना—इसमें व्यवहार अच्छा है, व्यवहारमें कोई कसर नहीं है, ऊपरी व्यवहार है पर केवल स्वार्थ साधनके लिये कामना मनमें रहती है तो वह प्रेम नहीं है। एक वास्तविक प्रेम होता है और दूसरा प्रेमके नामपर काम की क्रिया है।

जो दूषित काम है उसकी तो चर्चा ही नहीं है, दूषित काम तो पाप है। दूषित काम नहीं, लौकिक स्वार्थ साधनकी कामना भी अवैध है। लौकिक स्वार्थकी साधनाके लिये जो प्रेमका सद्व्यवहार होता है वह सद्व्यवहार आदर्श है, वह करना ही चाहिये पर उसका नाम प्रेम नहीं है वह भी एक काम की ही स्थिति है। जहाँ पर स्वार्थ साधनके लिये हम दूसरेके साथ सद्व्यवहार करके अपना काम बनाना चाहते हैं। यह काम बनानेकी सुन्दर अच्छी पद्धति है—प्रेमके द्वारा काम बना।

दूसरा इससे ऊँचा है—वह है व्यापार—मैत्री भावना। 'देत लेत मन संक न धरहिं।' देना और लेना। हम किसीकी सेवा करते हैं, किसीके साथ सद्व्यवहार करते हैं, किसीके साथ हम विनयका वर्ताव करते हैं तो उसमें हमारे मनमें यदि यह रहता है कि बदलेमें हमको भी इनसे इससे भी अच्छा व्यवहार प्राप्त हो—ये जहाँ परस्परका लेन-देन है वहाँपर भी वास्तविक प्रेम नहीं है, वह व्यापार है। प्रह्लादने भगवान्‌से इस बातको साफ शब्दोंमें कहा। प्रह्लादसे भगवान्‌ने कहा—तुम कुछ माँगो तो प्रह्लादने साफ-साफ यह कह दिया कि महाराज! ये माँगना और देना ये व्यापारकी रीति है। जो सेवा करके बदलेमें ले लेता है, लेनेके लिये सेवा करता है वह 'न स भृत्यः स वै वणिक्'। वह सेवक नहीं है वह तो व्यापार करनेवाला व्यापारी है, वणिक् है। सौदा बेचनेवाला है। एक चीज उसके पास थी उसे किसीके हाथ उसने बेच दिया। बदलेमें उसका मूल्य ले लिया तो इसमें सेवा और प्रेम नहीं, ये व्यापार है। ये भी एक कामका ही, भौतिक कामनाका ही एक रूप होता है। पर प्रेम वास्तविक जहाँ होता है वहाँ दूसरा स्वार्थ रहता है। जिसके साथ हम व्यवहार करते हैं उसका सुख, उसमें स्वार्थ रहता है। अपनी विस्मृति—अपनेको भूल जाना और अपने आपको देकर अपने सारे साधनोंको देकर दूसरेको सुख पहुँचाना है। यह त्याग जहाँपर है वहाँसे प्रेमका प्रारम्भ होता है। प्रेम होता है त्यागसे। बिना त्यागके कोई ये चाहे कि प्रेमकी प्राप्ति हो जाय तो वह प्रेमका स्वरूप ही नहीं समझा। हम जो चाहते हैं बदला। अमुक आदमीसे हम यूँ व्यवहार करें, बदलेमें हमसे वह यूँ व्यवहार करे इसलिये हम अच्छा व्यवहार करते हैं। ये भी बुरी चीज नहीं है। अच्छा व्यवहार करके अच्छा व्यवहार चाहना यह कोई बुरी चीज नहीं है। तथापि यह प्रेम नहीं है। प्रेम जो है वह केवल और केवल देना जानता है, लेना नहीं सीखा उसने और वह देता

है। जिसको देता है उसके सुखके लिये। उसका सुख ही इसमें है जिससे वह अपने द्वारा उसको सुखी करता रहे। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें ही भगवान्‌के वचन हैं श्रीगोपांगनाओंके प्रति कि तुमलोगोंसे देवताओंकी आयु प्राप्त हो जाय तो भी मैं उऋण नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकते उऋण? इसलिये नहीं हो सकते कि मैं आपसे अगर सौ रुपये लूँ और सौ मैं आपको ब्याज सहित लौटा दूँ तब तो मैं आपका कर्ज चुका सका और अगर बदलेमें न लौटाऊँ तो कर्ज रहा। कर्ज चुका कैसे? भगवान् यह कहते हैं कि गोपांगनाओंका ऋण हम चुका नहीं सकते। यह जरा समझनेका विषय है। गोपांगनायें भगवान्‌को सुख देती हैं अपना त्याग करके और भगवान्‌को सुखी देखकर सुखी होती हैं। गोपांगनाओंका सुख है भगवान्‌का सुख, भगवान्‌को सुखी करना। इसमें उनको सुख होता है और किसी चीजमें उनको सुख नहीं है। यदि भगवान् बदलेमें सुख देना चाहें तो क्या देंगे और कुछ वह चाहती नहीं, और चीजसे उनको सुख होता नहीं। उनको सुख होता है, उनके द्वारा भगवान् सुखी हों तब। भगवान् उनके द्वारा और ज्यादा सुखी हों तो उनको सुख होगा तो ऋण बढ़ेगा कि उतरेगा? जिस ऋणको उतारना चाहते हैं भगवान् वह ऋण तो ये ही है कि गोपांगनाओंके द्वारा उनको सुख होता है। बदलेमें सुख दें तब सुखका ऋण उतरा और सुख देनेके लिये और कोई चीज आपको अपेक्षित है नहीं, वे चाहती नहीं। वह चाहती हैं तुम और सुखी बनो तो उनके द्वारा और सुखी बनें तो ऋण उतरा कि बढ़ा? इसलिये प्रेमीका ऋण भगवान् कभी उतार नहीं सकते। तब दूसरा क्या उतारेगा?

जहाँ कोई देता ही देता है, जो लेता नहीं उसका नाम प्रेम है। 'तत्सुखे सुखित्वम्'—प्रेमकी परिभाषा नारदजीने दी। हम जिससे प्रेम करते हैं, जो हमारे प्रेमका पात्र है, प्रेमास्पद है, उसका सुख-सम्पादन करना निरंतर, उसका सुख ही जीवनका स्वभाव हो जाना—

यह नहीं देखना है कि वह कैसा है? रासपूर्णिमाकी बात हो रही है इसलिये इसे जरा समझना है। प्रेममें छः चीजें आवश्यक होती हैं। इसपर एक दर्शन है प्रेमका। नारदजीका इसपर ८४ सूत्र है। अंग्रेजी अनुवाद भी इसका हो चुका है। हिन्दीमें प्रेमदर्शन इसका नाम है। प्रेमका पूरा-पूरा व्याख्यान सूत्रोंमें दिया है नारदजीने। नारदजीने कहा छः चीजें प्रेममें आवश्यक हैं—गुणरहितं, कामनारहितं, अविच्छिन्नम्, सूक्ष्मतरं, अनुभवरूपं और प्रतिक्षणवर्द्धमानं।

गुणरहितं—किसीमें गुण दीखे तबतक प्रेम और गुण न दीखे तो प्रेम हट जाय। उन गुणोंसे प्रेम है और गुण तो न हटनेपर भी हटे हुए दीख सकते हैं—यह नियम है। यह सत्य सिद्धान्त है कि जिसमें हमारा मन राग करता है, आसक्ति है उसके दोष भी गुण दीखते हैं और जिसमें हमारा द्वेष है उसके गुण भी दोष दीखते हैं। हम बेईमानी नहीं करते पर हमारी राग-द्वेषकी जो आँख है वह ऐसी बन जाती है कि राग जहाँपर है वहाँ दोष भी गुण दीखेगा और द्वेष जहाँपर है वहाँ गुण भी दोष दीखेगा। किसीमें गुण है भी और रहा भी है पर यदि हमारी आँख पलट गयी, हमारे मनमें रागके बदले द्वेष हो गया तो उसकी प्रत्येक क्रियामें जिसमें हमको गुण दीखता था उसीमें दोष दीखने लगेगा—स्वाभाविक बात है। दोष दीखनेपर प्रेम न रहे और गुण दीखनेपर रहे तो यह प्रेमका स्थायी भाव नहीं, यह प्रेम ही नहीं। प्रेम होता है—गुणरहितं—किसी भी गुणकी वहाँ अपेक्षा नहीं है। प्रेम क्यों होता है? प्रेमके लिये होता है। प्रेमका फल क्या है? प्रेमकी वृद्धि प्रेमका दूसरा फल है। कोई बदलेमें प्रेम करे तो हम करें—ये व्यापार है। प्रेम बदला नहीं जानता, प्रेम तो देना जानता है—यह है गुणरहितं।

दूसरा कामनारहितं—किसी भी कामनाको लेकर हमारे मनकी कोई इच्छा उसके द्वारा पूर्ण हो, इस प्रकारकी मनःस्थितिको लेकर

जो प्रेम होता है। नारदजी कहते हैं कि वह भी प्रेम नहीं, वह तो उस वस्तुमें प्रेम है। वह वस्तु उससे मिली तो प्रेम और न मिली तो प्रेम नहीं। मान, धन, कीर्ति, आराम, सुख, हित, आदर सम्मान क्या-क्या वस्तु हम चाहते हैं? अगर इसके विपरीत वस्तु मिले तब भी हमारा प्रेम बना रहे वह प्रेम होता है।

प्रेमका यह स्वरूप बताते हैं कि प्रेमके ध्वंस होनेके कारण उपस्थित होनेपर भी जो ध्वंस न हो अर्थात् जिन बातोंको लेकर मनुष्य प्रेम करता है किसीसे उससे सारी विपरीत बातें हो जायँ, प्रेमके नाशके कारण मौजूद हो जायँ और उस अवस्थामें भी वह प्रेम अक्षुण्ण बना रहे बल्कि बढ़ता रहे—इसका नाम प्रेम।

जहाँ कामनारहितं—तुलसीदासजीने बड़ा सुन्दर चातकका एक प्रसंग लिखा है दोहावलीमें इस प्रेमकी परिभाषा करते हुए। चातकका स्वभाव है मेघकी ओर देखते रहना और बादल जब स्वाति नक्षत्रमें बरसे तब उन बूँदोंको अपनी चोंचमें लेकर तृप्त होना और दूसरी ओर देखना नहीं, दूसरे जलको पीना नहीं। अब वहाँ उत्प्रेक्षा करते हैं बड़ी सुन्दर। कहते हैं कि प्यास लगी है चातकको और वह मेघ बरसता ही नहीं तो प्यासा कहीं पानी खोजेगा। कबतक वह प्यासा रहेगा? यहाँ नहीं तो वहाँ खोजेगा। चातक कहीं पानी खोजता है कि नहीं? वह कहते हैं कि नहीं।

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग॥ (२८०)

रटते-रटते जीभ सूख गयी और प्यासके मारे सारा बदन सूख गया तो क्या चातक यह समझे कि इतने दिन सेवा करते हो गये। हमने तो केवल सेवा ही की और ये एक बूँद हमको जल नहीं देता। इसको छोड़ दें। तुलसी चातक प्रेम कौ, नित नूतन रुचि रंग'— चातकके प्रेममें और भी वृद्धि होती है और नित्य नया रंग लाता है।

जौं घन बरसां समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस॥ (२७८)

जो घन बरसैं समय सिर जो भरि जनम उदास'—चाहे वह आज बरसे चाहे जीवन भर उदासीन रहे, न बरसे

तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस'—मेघ चाहे तुम आज बरसो और चाहे जीवन भर न बरसो पर दूसरेकी ओर ताकेगा नहीं। बरसा नहीं तो न बरसा मान लिया। पर कहीं उलटी क्रिया उसने की तो रात-दिन हम तो सेवा करते रहे, उसकी ओर देखते रहे, ताकते रहे, दूसरेकी ओर देखा नहीं, सारा दुःख सहा, सबकुछ सहा और इसपर भी उसका प्रेम करना तो दूर रहा, उसने ओले बरसा लिये।

बरषि परुख पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परीये न चाहिये चतुर चातकहिं चूक॥ (२८२)

कहते हैं कि बरषि परूख—अर्थात् कठोर, पाहन—पाषाण, पत्थर। जो पयद-मेघ जल बरसानेके बदले बड़े भारी-भारी कठोर-कठोर पत्थर बरसावें और पत्थर बरसाकर वे उसकी पाँखोंके टुकड़े-टुकड़े कर दे तो ऐसी अवस्थामें तो चातक समझेगा कि आजतक हम भूलमें रहे अब तो भूल सुधार दें। बोले—वह चातक इतना प्रेममें चतुर है 'चतुर चातकहिं चूक'—उस प्रेमके चतुर चातकके व्यवहारमें चूक नहीं है। जहाँ मनमानी होता है, मनकी बात होती है वहाँ तो प्रेम रहा ही इसमें कौन-सी बड़ी बात है? मनके अत्यन्त विपरीत और केवल विपरीत ही नहीं कष्ट और दुःखोंका पहाड़ वह डाल दें तब भी उसमें प्रेम बना। तो बोले—ऐसी बात चातकमें क्यों होती है? बड़ी सुन्दर बात कहते हैं—

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख॥ (२८१)

चातकके चित्तमें अपने प्रियतम मेघके दोष कभी उदय ही नहीं

होते। मेघमें कितने ही दोष हों वह दोष उसको कभी दीखते ही नहीं। क्यों नहीं दीखते? क्योंकि प्रेम पयोधि है, प्रेमका समुद्र लहरा रहा है। **'ताते न माप न जोख'**—माप-तौल, लेन-देन नहीं है इसलिये इस प्रेमके समुद्रमें इन दोषोंका पता ही नहीं लगता बल्कि उसकी टेक अधिक रहती है। एक चातक उड़ा जा रहा, उड़ा जा रहा। पीछेसे बहेलियेने बाण मारा। चातक बिंध गया और वह मरणासन्न होकर गिरा। नीचे गंगा बह रही थी तो गंगामें पड़ते ही मरा। मरते ही चोंच ऊपर उठायी। पक्षी जब मरते हैं चोंच ऊपर उठ जाती है। तुलसीदासजी चातकके प्रेमकी उत्प्रेक्षा करते है—

बध्यौ बधिक पर्‌यो पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।

Ì ëû â è ¿ æ· ¤ Âæ̈ÂÅU ×ÚUãæ̈ Ü»è Ù ¹ æ̂H (३०२)

बध्यौ बधिक पर्‌यो पुन्यजल—पुण्यसलिला—गंगाको कहते हैं। नाम लेनेपर चार सौ कोससे अच्छी गति हो जाती है। गंगाकी बूँद मरनेके बाद भी यदि मुर्देके मुँहमें डाल दी जाय तो उसमें जो जीव था उसकी सद्‌गति होती है। यहाँ तकका उल्लेख आता है। उस गंगामें पड़ा चातक कहता है—गंगाजल कहीं मुँहमें न चला जाय, टेक टूट जायेगी प्रेमकी।

'बध्यौ बधिक पर्‌यो पुन्यजल उलटि उठाई चोंच'—बधिकने बध किया, पुण्यसलिलामें गिरकर मरा। मरते ही उसने चोंच ऊपर उठा ली। 'तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगी न खोंच'—चातकके प्रेमरूपी वस्त्रमें मरते समय भी खरोंच नहीं लगी। ये है कामनारहित। कामनारहितं—जहाँ भी कामना हुई, जहाँ भी बदलेमें अपने सुखके लिये कुछ पानेकी इच्छा है, दोष दृष्टि है वहाँ प्रेम नहीं है। स्वार्थ है।

अविच्छिन्नं—जिसका तार टूट जाय जो विच्छिन्न हो जाय किसी कारणको लेकर वह भी प्रेम नहीं है। वह प्रेमका प्रवाह निरंतर लगातार बना रहता है। इसको भागवतमें सात्विकी भक्तिके रूपमें

कहते हैं कि जैसे गंगाका प्रवाह निरंतर हजारों हजारों विघ्न बाधाओंको तोड़ता-फोड़ता हुआ, किसीकी परवाह न करता हुआ निरंतर, अनवरत न मालूम किस कालसे समुद्रकी ओर जा रहा है। कभी गंगाका प्रवाह समुद्रकी ओर जानेसे रुका नहीं, विघ्नोंको हटा दिया या बड़े विघ्न हुए तो रास्ता दूसरा बना लिया। पर समुद्रकी ओर उसकी गति रही। अविच्छिन्न गति जैसे समुद्रकी ओर गंगाकी है इसी प्रकार जिसकी वृत्ति, जिसके प्रेमकी वृत्ति निरंतर प्रेमास्पदमें अक्षुण्ण बनी रहती है—अखण्ड, अविच्छिन्न—वह प्रेम है।

सूक्ष्मतरं बड़ी महान चीज प्रेम जो है ऊपर-ऊपर नाटक नहीं करता। दिखाता नहीं—ये सूक्ष्मतर है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्म। अन्तरकी चीज है। सीताजीके प्रति श्रीरामने कहलवाया—

'सो मन रहत सदा तोहि पाहीं।
जानु प्रीति रस एतनेहिं माही।

प्रेममें एक चीज और होती है बड़ी सुन्दर क्योंकि वहाँ देना ही देना है। लेनेवाला भी चाहता है कि हम किसी प्रकार देनेवाले बनें। आशिक माशूक हो जाता है, माशूक आशिक बन जाता है। प्रेमास्पद प्रेमी और प्रेमी प्रेमास्पद बन जाता है स्वाभाविक। जो हमें दे ही दे। हमारा मन करेगा ही कि इसको हम दें। लेनेवाला नहीं बनें, हम देनेवाले बनें। इस प्रकार स्वाभाविक वृत्ति होती है। सीताजीने हनुमानजीसे पूछा—कुछ हमारे लिये संदेश कहलवाया है सरकारने। पहले तो यह बात नहीं आयी। हनुमानजीसे प्रगट हुई ये बात। हनुमानजीने कहा—कहलवाया है, तब बताया—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एकु मन मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जानु प्रीति रसु एतनेहिं माहीं॥

(रा०च०मा०/सु०/१५/६-७)

तेरे और मेरे प्रेमके तत्वको जानता है केवल एक मेरा मन। इसीमें आगे आयेगा—अनुभवरूपम्। मन अनुभव करता है प्रेमका, वाणीमें वह प्रेम नहीं आता। बाहर नहीं छलकता और दूसरेका मन जानता नहीं।

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एकु मन मोरा॥

मेरा मन तुम्हारे प्रेमके तत्वको जानता है। **'सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं'**—वह मन तो रहता है निरंतर तुम्हारे पास। तुम्हारे और मेरे प्रेमको तत्वको जाननेवाला जो मन है वह मन मेरे पास नहीं है। वह निरंतर तुम्हारे पास रहता है। **'जानु प्रीति रसु एतनेहिं माहीं।'** इस प्रेमका रस क्या है? इसको इतनेमें ही तुम समझ लो। सूक्ष्मतरं, अनुभवरूपम्। ये सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप हैं। मेरा आपसे बड़ा प्रेम, बड़ा प्रेम। ये प्रेम-प्रेम कहनेसे प्रेम नहीं है। प्रेम तो अनुभवकी वस्तु होता है, जो निरंतर अनुभव करता है एकात्मताका।

छठी चीज है प्रतिक्षणवर्द्धमानं—प्रेम निरंतर बढ़ता रहता है, उसकी बढ़त नहीं रुकती। जैसे ज्ञानमें अलम है, ज्ञानकी पूर्ण प्राप्ति होनेके बाद कुछ प्राप्त करना रहता नहीं—'तस्य कार्यं न विद्यते'। ज्ञान जहाँ पूर्ण हो जाता है वहाँ प्रेम सदा अपूर्ण रहता है, ज्ञानकी सिद्धि पूर्णतामें है और प्रेमकी सिद्धि नित्य अपूर्णतामें है। प्रेमी कभी ये नहीं मानता कि मेरा प्रेम है। वह तो अपने प्रेममें निरंतर त्रुटि देखता है इसीलिये माँगेगा क्या? वह तो हमेशा देखता है कि मेरी त्रुटि ही त्रुटि है और उनका मेरे प्रति सद्भाव ही सद्भाव है तो कुछ देने लायक हो, कुछ माँगने लायक हो तब न माँगे। वह अपनेमें निरंतर त्रुटिका, कमीका अनुभव करता है। वह देखता है कि मुँह भी कैसे दिखायें, हम तो प्रेमी हैं ही नहीं और ये हमको प्रेमी मानते हैं। यह तो प्रेमी माननेवालोंका अपना गुण है जो इनको हममें प्रेम दीखता है। हममें तो है ही नहीं—तब है नहीं जहाँ होगा, वो वस्तु है नहीं और चाहिये, उसकी वृद्धि करना चाहेंगे स्वाभाविक। घर भरा, घरमें जगह ही नहीं है तो कहाँसे लाकर रखें। लेकिन वहाँ तो घर हमेशा खाली दीखता है प्रेमसे इसलिये 'प्रतिक्षणवर्द्धमानं'।

ये छः प्रेमके लक्षण हैं—गुणरहितं, कामनारहितं, अविच्छिन्नम्, सूक्ष्मतरं, अनुभवरूपम् और प्रतिक्षणवर्द्धमानं। ये छः जहाँ विकसित हो जाते हैं वहाँ त्याग विकसित होता है। त्यागसे ही छः गुण आते हैं। इन छः गुणोंसे त्यागकी वृद्धि होती है। जहाँ ये त्याग होता है वहीं प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। अपने घरोंमें लौकिक साधनोंमें अब आप देख लें। आपसमें प्रेम बढ़ाना हो तो उसके गुण देखो, सेवा करो, दोष मत देखो और सेवा कराना मत चाहो। बस! प्रेम बढ़ जायेगा, स्वाभाविक प्रेम बढ़ जायेगा। यदि दोष देखो और लेना चाहो तो प्रेम घटने लगेगा। जहाँ देना है और दोष न देखना है वह देखता तो हमारा गुण ही गुण गाता है। जिसकी भी सेवा करता है उसका मन चाहता है कि हम ऐसे बनें और जहाँ हम ग्रहण करना चाहते हैं और दोष देखते हैं उसका मन हट जाता है। किसी दूसरेको, किसी घरवालेको भी अगर प्रसन्न करना हो, अपने अनुकूल बनाना हो तो उसका साधन मान नहीं है, दान है। कलह नहीं है सेवा है। यह करके देख लें अपने आप बदलता है। अपने आप मन बदलता है। ये न्यायसे नहीं बदलता, उदारतासे बदलता है। जहाँ हम प्रेममें उदार होंगे, वहाँ हम प्रेम करेंगे, प्रेम चाहेंगे नहीं। सेवा करेंगे, सेवा चाहेंगे नहीं। एक अंग्रेजके बड़े सुन्दर वाक्य हैं—

To serve, not to be served.
To Love, not to be loved.

बड़ी सुन्दर बात है। सेवा करें, सेवा करायें नहीं। प्रेम करें, प्रेम चाहें नहीं। प्रेम अपने आप आवेगा। हम जो कुछ देते हैं

वही अनन्तगुना होकर हमारे पास आता है। ये सिद्धान्त हम भूल जाते हैं। इसीलिये गड़बड़ी होती है। हम अगर प्रेम दें तो ये राक्षस भी बदल जाते हैं, औरोंकी बात छोड़ दीजिये। राक्षसोंका दमन करना आवश्यक है पर दमनकी नीतिसे प्रेमकी नीति कहीं ऊँची है। हम उस स्तरपर नहीं पहुँचे हैं। इसलिये हमें इसका सहारा लेना पड़ता है और लेना आवश्यक है। लेकिन साधनाके मार्गमें बस प्रेम ही एकमात्र ऐसी चीज है जो अपनेमें और दूसरेमें शान्ति पैदा करके भगवान्‌की ओर लगा सकता है। ये प्रेम त्यागसे होता है। जहाँ त्यागकी पराकाष्ठा है, जहाँ स्वसुख वाञ्छाकी कल्पनाका सर्वथा अभाव है। इस वृत्तिका नाम है गोपी। अपने सुखकी इच्छाका, अपनी इन्द्रियोंको चरितार्थ करनेकी इच्छाका, अपना सर्वस्व देकर लोक परलोक सबका परित्याग करके प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी बनाना—ये जीवनका व्रत। इसके अतिरिक्त और कोई सुख हमें मिले किसी प्रकारसे—इस वाञ्छाका सर्वथा अभाव। न लोक सुख, न परलोक सुख, लोक-परलोक, भोग-मोक्ष सबका जहाँपर सन्यास पूरा है। वहाँपर इसका प्रादुर्भाव होता है। भगवान्‌की शरणागतिमें ही मोक्षकी इच्छाका सन्यास हो जाता है और प्रेममें तो ये होता ही नहीं। यह बहुत सीधी बात है और समझनेकी बात है—प्रेम चाहता है देना, सेवा करके सुखी करना। जबतक उसपर और बन्धन है तबतक तो पूरी सेवा वह कर नहीं सकता। सारे बन्धनोंको तोड़कर तो वह लगता है प्रेमकी सेवामें। अब अगर वह मुक्ति चाहता है तो इस सेवासे ही न चाहता है। सेवासे जो मुक्ति चाहता है वह सेवक कैसा? वह प्रेमी कैसा? इसलिए चाहता है कि सेवाका फल, सेवाका अधिक अवसर मिले। सेवाका फल—सेवामें अधिक पवित्रता आवे। भागवतका श्लोक है—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत् सेवनं जनाः॥ (३/२९/१३)

भगवान् कहते हैं कि मेरे जो सेवक हैं, मेरे जो जन हैं, मेरे जो अपने प्रेमी हैं वे पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ देनेपर भी सेवाको छोड़कर उन्हें स्वीकार नहीं करते। अर्थात् और कोई बन्धन उनपर रहा नहीं, उनपर बन्धन है एक सेवाका और सेवाके बन्धनसे वह मुक्त होना चाहे तो सेवक ही नहीं, उनका स्वरूप ही नष्ट हो गया। वह प्रेमी ही नहीं।

प्रेमी अपनी सेवाके द्वारा नित्य निरंतर अपने प्रियतमको, प्रेष्ठको, भगवान्‌को सुखी बनाना चाहता है। ये वृत्ति जिसमें जहाँ प्रतिफलित होती है उसका नाम गोपी है। गोपियोंमें मुख्य जो है, जहाँसे जो इसका मुख्य निर्झर है, मुख्य जो उत्स है वह है राधा। राधामेंसे ये सारी गोपियाँ कायव्यूहरूपा होकरके उन्हींमेंसे निकली है। ये सब की सब श्रीकृष्णकी सुखधारा हैं, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेवाली चीज हैं। इन्होने अपने सुखकी वाञ्छाको, इन्होंने अपने शरीरको, अपने आपको श्रीकृष्णको अर्पण कर दिया।

निजांगामपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्याः परं न मे पार्थ निगूढ़प्रेमभाजनम्॥

भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि मेरे प्रेमकी निगूढ़ भाजन, मेरे प्रेमका गुप्तसे गुप्त सुख लेनेवाला पात्र कौन है? ये गोपांगनायें हैं। क्यों हैं? '**निजांगमपि या गोप्यो ममेति समुपासते**'—इनका संसारमें जीवन, प्रत्येक अंगकी रक्षा—ये किसलिये, भगवान्‌की सेवाके लिये। अपना क्या होगा? भुक्ति-मुक्ति किसी प्रकारकी भी लौकिक जो अनुकूलताकी आकांक्षा है—ये तो बहुत त्याज्य है ही। इसकी तो कोई गणना ही नहीं, बहुत ऊँचे-ऊँचे ऐसे भोग—जिन भोगोंकी हमारे मनमें कल्पना नहीं और भोगोंके त्यागसे होनेवाला जो परम मोक्ष सुख है—वह भी नहीं। भोग-मोक्ष दोनोंकी आकांक्षाओंसे रहित जो केवल और केवल प्रियतमको सुख पहुँचानेकी इच्छा जहाँ जाग्रत होती है और उस इच्छाको लेकरके जिसके जीवनमें सारे कार्य होते

हैं—वह है गोपियोंके कार्य। वह गोपियाँ भगवान्‌को सुख पहुँचाना चाहती हैं।

अब एक रहस्य समझनेका और है—भगवान् सुख स्वरूप हैं। सुखकी कमी तो हमलोगोंमें है। जिनके पास सीमित सुख है, नाश होनेवाले सुख हैं तो हम तो चाहते हैं कि हमको और अधिक सुख मिले और कभी नष्ट न हो। पर जो सुख स्वरूप है जो निरंतर सुख स्वयं है। जिनका सुख नित्य अस्तित्वके कारणसे नित्य है। ऐसे नित्य अनन्त सुखस्वरूप भगवान् वे सुख क्यों चाहेंगे? यही त्याग और प्रेमकी महिमा है। कुछ नहीं चाहिये। बहुत नीचे उतरकर हम कल्पना करें। जिसके घरमें बहुत खानेको, पीनेको बढ़ियासे बढ़िया मिठाइयाँ, बढ़ियासे बढ़िया चीज है, सबकुछ है। एक कोई ऐसा आदमी आता है जो बड़े प्रेमसे एक फल लाता है। वह कहता है—महाराज! ये फल मैं आपके लिये लाया हूँ और मैं कितनी दूरसे आया हूँ। ये मेरे बगीचेका फल है। आप इसे जरा चख लें। वह आदमी भूखा नहीं है पर उसके प्रेमकी भूख उसको लग जाती है। इतने प्रेमसे लाया है तो यह बड़ा मीठा होगा। जो स्वाद प्रेममें है वह वस्तुमें नहीं है—यह एक नियम है। हम किसीके यहाँ बहुत सादी चीज, बहुत कम कीमतकी चीज लेंगे उसमें सुख होगा। किसी द्वेषीके यहाँ जाइये आप। वह बड़ी खातिर भी करे तो संदेह ही पहले होगा कि कहीं विष तो नहीं मिला दिया है खानेमें और आनन्द नहीं आयेगा। लेकिन प्रेमीकी छोटी से छोटी चीज प्रेमसे सनी है तो वह मीठी होगी। भगवान्‌ने इसको स्वयं कहा—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ (गीता ९/२६)

पत्र—एक पत्ता, फूल, जल कुछ भी प्रेमसे सना हुआ मुझे देता है उसे मैं स्वयं खाता हूँ। लेकर रखना नहीं है कि मैं तुम्हारा मन रख दिया, ले लिया वह बेचारा कम हैसियतका है तो कुछ बोलेगा नहीं महाराज आपने ले लिया, खाया तो नहीं—ये कहेगा नहीं। बेचारा मनमें समझेगा कि इन्होंने हमारा सम्मान नहीं किया लेकिन जब उसको उसीके सामने सराहता हुआ खा ले, बड़ेसे बड़ा आदमी उसके दिये हुए आसनपर वो सिंहासनपर बैठनेवाला बैठ जाय उसके गलबहिया डाल ले। जब सुदामाके गलबहिया डाल दी भगवान्‌ने। तमाम द्वारिकाके लोग, सरदार लोग, रानियाँ चकित हो गयीं कि ये धूलसे भरा हुआ ब्राह्मण जिसके पहननेको कपड़ा नहीं, तमाम रगें, तमाम नसें दीख रहीं और ये मैला-कुचैला इसको पलंगपर बैठा लिया है और हाथोंसे उसके पैर दबा रहे हैं, उसके काँटे निकाल रहे हैं और फिर बगलमें बैठाकर गलेमें बाँह डालकर भाई-भाई कहकर बातें कर रहे हैं। बड़े प्रेमसे आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। सुदामा तो निहाल हो गये। सुदामाने कहा लौटते समय कि कहाँ मैं और कहाँ ये? कितना मैं तुच्छ और कितने ये ऊँचे पर इन्होंने मेरे साथ कैसा व्यवहार किया? मेरे काँटे हाथोंसे निकाले, मेरे पैरोंकी धूल पीताम्बरसे झाड़ी। मुझे बगलमें बैठा लिया। ये जो है प्रेमकी चीज, प्रेमकी चीज भूख न होनेपर भी भूख लगा देती है। प्यास न होनेपर भी प्यास लगा देती है।

भगवान्‌की कोई कामना नहीं पर गोपियाँ चाहती हैं भगवान्‌को सुख पहुँचाया जाय तो गोपियों द्वारा मिलनेवाला सुख यह भगवान्‌की कामनाकी वस्तु हो गया। गोपियाँ अपने आप नहीं आयीं। मुरली बजायी भगवान्‌ने और मुरलीके द्वारा जिन-जिन गोपियोंको वहाँ बुलाना था उन-उनके कानोंमें आवाज पहुँचायी बल्कि ये संतलोग, भक्तलोग अपने अनुभवसे कहते हैं कि उनके नाम लिये—प्रत्येकने सुना कि मुझे बुला रहे हैं, मुझे बुला रहे हैं, मुझे बुला रहे हैं। कहीं वहम न हो जाय, किसीके मनमें शंका न उठे इसलिये शुकदेवजीने

जहाँ रासका वर्णन आरम्भ किया पहला श्लोकका पहला शब्द है भगवान्।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०/२९/१)

भगवान् भी अर्थात् कोई ये न समझे कि इनके पास कुछ कमी है। जिनके पास छः प्रकारके ऐश्वर्य अनन्तरूपसे हों, नित्यपूर्ण—उनका नाम भगवान् है। उन भगवान्में कमी नहीं पर वे भगवान भी—भगवानपि। 'शरदोत्फुल्लमल्लिका'—ये शारदीय रात्रियाँ—कई अनन्तरात्रि, ब्रह्मरात्रि हो गयी। इस शरदोत्फुल्लमल्लिका युक्त जो रात्रि हैं, इन रात्रियोंमें अपने मनका निर्माण किया भगवान्ने। उस मनके द्वारा गोपियोंका दिया हुआ सुख आस्वादन करके उन्हें सुख पहुँचानेके लिये। यहाँपर क्या है? ये है स्वरूपवितरण है। 'वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे'—रन्तुम् का भाव यहाँपर है विभिन्न भावोंसे देखा। आचार्योंने सबने ठीक देखा कि भगवान्का ये रमण न तो लौकिक रमण है और न ये गोपियोंका आत्मरमण है। योगियोंके आत्मरमणकी भगवान्को आवश्यकता नहीं। वह तो स्वयं योगेश्वर हैं। योगेश्वर ही नहीं, योगेश्वरेश्वर हैं और लौकिक रमणकी तो इनकी कल्पना ही नहीं, तो क्या है? अपना स्वरूपभूत जो प्रेम है उसका वितरणरूप रमण है। ये खेलकी लीला तो भगवान्ने स्वयं उनको बुलाया इसलिये कि उनके द्वारा सुख प्राप्त करके उन्हें सुखी करें—यहाँ इनके प्रेमकी पराकाष्ठा हो गयी कि जहाँ भगवान्में भी कामना हुई। प्रेमका यह जादू जो है नित्य तृप्तमें अतृप्ति पैदा कर दे जो नित्य निष्काममें कामना पैदा कर दे। भगवान् नित्य तृप्त हैं, नित्य निष्काम हैं, नित्य निरीह हैं। उन भगवान्में केवल ये पवित्र त्यागमय जो प्रेम है जिसकी भित्ति त्याग है। उस त्यागमय प्रेमका ये चमत्कार है कि उसका एक पवित्र रस होता है। जहाँ लेन-देन है वहाँ उस रसमें कुछ विष मिल जाता है, कुछ कड़वापन आ जाता है। कोई दे ही दे और ले नहीं उसकी बात हमें अच्छी लगती है और जरा भी

कहीं बदलेमें कुछ चाहने लगे तो हम थोड़ेसे सावधान हो जाते हैं कि न मालूम ये क्या माँग बैठेगा? और जब वह माँगनेके लिये ही देना चाहता है तब हम उससे अलग होने लगेंगे। कहीं ज्यादा माँग लेगा तब तो हम उससे विरक्त हो जायेंगे। लेकिन जो देता ही देता है उसमें एक ऐसा मिठास, ऐसा माधुर्य होता है। ऐसी उसमें एक मधुरता होती है—दिव्य, चिन्मय मधुरता। विशुद्ध सत्वकी मधुरता वहीं होती है जहाँ तीनों गुणोंकी, किसी भी चीजकी आकांक्षा न हो, केवल भगवत् प्रेमरूप, भगवत् रसकी जहाँ आकांक्षा हो वहाँ विशुद्ध सत्वका प्राकट्य है। तीनों गुणोंवाले सत्यका नहीं। विशुद्ध सत्त्वरूप भगवान्से विशुद्ध सत्त्वरूप प्रेम करके, विशुद्ध सत्त्वरूपको—आनन्दको प्राप्त करना स्वाभाविक जहाँपर उसकी भी इच्छा नहीं। इस प्रकारका जहाँ भाव है वह गोपी है और उन गोपियोंके साथ आज शरदपूर्णिमाके दिन रासलीला हुई।

अनादिकालीन जगत्के इतिहासमें ये शारदीय पूर्णिमाका रास—ये प्रेमराज्यमें बहुत बड़े महत्त्वकी चीज है। त्यागकी पूर्ण पराकाष्ठाकी जहाँ त्यागमय, त्यागस्वरूप, सर्वथा निष्काम, नित्यतृप्त भगवान् जिसके रसका आस्वादन करनेमें तत्पर हों वो रात्रि आज है। शारदीय रात्रिको समझनेकी बात यहाँ इतनी ही है कि ये भोगको लक्ष्य करके नहीं, त्यागको लक्ष्य करके है। गोपियोंकी भावनामें, गोपियोंकी आदर्शलीलामें जो काम देखता है, जो कामकी शिक्षा प्राप्त करता है वो गिरता है। उसने गोपियोंको समझा ही नहीं और गोपियोंमें जो पराकाष्ठाका प्रेम देखता है जहाँपर आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर केवल-केवल त्याग ही त्याग है वह अगर कहीं भोजन करती हैं इसलिये कि उनको सुख होगा। अगर कपड़े त्यागनेमें सुख तो कपड़े त्याग दें, पहननेमें सुख तो पहन लें, खानेमें सुख तो खायें, न खानेमें सुख तो न खायें। प्रियतम भगवान्का सुख ही जिनके जीवनका स्वरूप और स्वभाव बन गया। इस प्रकार तत्सुखेसुखित्वम्की मूर्तिमान प्रतिभायें ये गोपांगनायें हैं। इनकी परम

स्मृति आजके दिन होती है। इनके महत्त्वको अगर समझनेकी इच्छा है तो समझनेका अवसर आजके दिन है। इसलिये शारदीय पूर्णिमाकी रात्रि बहुत बड़ी प्रेमराज्यकी, त्याग राज्यकी ऊँचीसे ऊँची शिक्षा देनेवाली रात्रि है। आज रासपूर्णिमा है।

रासपूर्णिमाके दिन हमलोगोंको कुछ सीखना चाहिये। दो-तीन बातें हैं—एक बात तो पहली ये है कि मानव जीवनका प्रधानसे प्रधान उद्देश्य होना चाहिये भगवत् प्रेमकी प्राप्ति। जितने भी और उद्देश्य हैं वे सबके सब गौण हैं और अधिकांश त्याज्य हैं। भोगसुख तो त्याज्य है। स्वर्गसुख भी भोगमें आ गया—त्याज्य है। संसारके सारे प्रकारके यश, कीर्ति, मान, लोक-परलोकके ये सब त्याज्य हैं। मोक्षसुख भी गौण है। मोक्ष-सुख त्याज्य नहीं—गौण है क्योंकि मोक्षसुख जो है यह प्रेमके राज्यमें अपनेआप आ जाता है। जैसे हम किसी बहुत पत्तेवाले घेरेवाले पेड़के नीचे जायँ और वहाँ जाकर हम कहें कि कोई छायाका इंतजाम करो। बहुत छायावाले सघन पेड़के नीचे जाकर छाया चाहें तो वह चाहनेकी चीज ही नहीं क्योंकि वहाँ तो स्वयं छाया है। भगवान्के प्रेमको प्राप्त करके जो ज्ञान चाहें वे भूले है क्योंकि ज्ञान तो वहाँ स्वयं खेलता है। ज्ञान तो वहाँ भगवान्के चरणोंमें रहता है। 'मुक्ति चरणसे झरती है' वहाँ जगत्का बन्धन तो छूट गया तभी उस वृक्षकी छायाके नीचे पहुँच सके। वहाँ ज्ञान कहाँ है? अग्निके पास तापने जायँ? अग्निके पास जायँ और बोलें कि तुम गर्मी दो हमें। ज्ञानस्वरूप भगवान् जो हैं वह अपने ज्ञानको ढककर वहाँपर उनके साथ खेल करते हैं। ज्ञानका अभाव नहीं। इसलिये ज्ञानकी न तो ये प्रेमी लोग परवाह करते हैं। परवाह ही नहीं करते, ज्ञानको गरज हो तो वहाँ आवे। बोधिसारमें महात्माने लिखा है कि ये मुक्ति जो है ये प्रेमियोंके पीछे-पीछे घूमा करती है कि कहीं हमें ये लेकर कृतार्थ करें, कहीं हमें चरणोंकी सेवा दे दें तो हम कृतार्थ हो

जायँ। ब्रह्मविद्याने गोपीभावकी प्राप्तिके लिये उपासना की है। पद्मपुराणमें कथा आती है। इसलिये ज्ञानकी वहाँ आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ज्ञान वहाँ स्वयं छिपा हुआ प्रेमकी लीलाको देख-देख निहाल होता है। मुक्ति वहाँ तो आती नहीं क्योंकि मुक्ति आ जाय तो सेवा बन्द हो जाय। व्रजरसिकोंने कहा—'मुक्ति नोन सी खारी लागै'—ये नोन-सी क्या? नोनसे भी ज्यादा खारी लगती है। वह मुक्तिको ब्याधि कहते हैं। जैसे-जैसे बीमार हो जानेपर आदमी और उसके खानपानका आनन्द छूट जाता है ऐसे यदि मुक्ति कहीं बीचमें आ जाय तो प्रेमका रसास्वादन बन्द हो जाय वे इसको ब्याधि मानकर इससे मुक्त रहना चाहे।

व्रज रज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय।

ये चीज ठीक है। इसलिये जो प्रेमी भगवान्के हो जाते हैं वे न तो अज्ञानी होते हैं न अपनेको ज्ञानवान मानते हैं। उनको इन सब बातोंका पता नहीं रहता। वे तो केवल और केवल अपने प्रियतमके सुखका चिंतनमय स्वभाव स्वरूप धारण किये रहते हैं। उनका स्वरूप है प्रियतमका सुख। उनका स्वभाव है प्रियतमका सुख। 'तत्सुखेसुखित्वम्' इसलिये आज हमें सीखना है इस चीजको कि भगवान्के प्रेमको प्राप्त करना जीवनका परम और चरम साध्य है और प्रेमकी प्राप्ति सबको हो सकती है। कर्मका फल तो मिलेगा कर्म होनेपर, प्रेम मिलेगा चाह होनेपर। जहाँ प्रेमकी चाह हुई कि त्याग आया। त्याग आया तो प्रेम आ गया। प्रेम आया तो आनन्द आया। बिना त्यागके प्रेम नहीं होगा, प्रेमके बिना सुख नहीं होगा। घरमें भी अगर प्रेम नहीं है कलह है तो दुःख है। प्रेम क्यों नहीं है? त्याग नहीं है। त्याग हुआ तो प्रेम आया, प्रेम आया तो आनन्द आया। ये स्वाभाविक बात है। ये अटल नियम है। प्रेमके हम सब अधिकारी हैं।

तीसरी बात यह कि प्रेमकी प्राप्तिमें एक बहुत सुन्दर चीज

ये है कि रूखापन नहीं है। भगवान्‌के मधुर-मधुर नामका, गुणका, लीलाओंका स्वरूप चिन्तन है। मीठे-मीठेमें रहो तो मीठेमें ही जब असली मीठेका स्वाद आ जायेगा तो नकली मीठेसे मन अपने आप हट जायेगा। असली मीठा न मिले और नकली मीठेको छोड़ना चाहे तो जरा दिक्कत होती है। विषयोंमें दु:ख देखकर वैराग्यकी भावना करना और भगवान्‌में परम सुख देखकर भगवान्‌को भजना उनमें वैराग्य अपने आप आता है जैसे दिन उदय हुआ, सूरज उग गया तो हजार बल्बकी रोशनी है तो उसकी ओर कौन देखता है। फीका पड़ गया। इसी प्रकार भगवत्‌चिंतनके सामने भोग चिंतन अपने आप फीका पड़ जाता है। भगवान्‌के रसके सामने विषयोंका रस कड़वा मालूम होने लगता है। वह अपने आप छूट जाते हैं। इसलिये इसमें सीधापन ये है कि भगवान्‌की लीलाका, गुणका, स्वरूपका, माधुर्यका चिंतन करो। विषयोंके दु:खका चिंतन मत करो। विषय तो वहाँ अपने आप रहेंगे नहीं। जब रहेंगे नहीं तो दु:खकी कोई कल्पना भी नहीं। इस परम सुखमें विषयोंका सुख अपने आप नष्ट हो जायेगा।

ये तीन बातें हैं—भगवान्‌का प्रेम जीवनका परम साध्य। प्रेमके हम सब अधिकारी और प्रेमकी प्राप्तिके लिये भगवान्‌का लीला, गुण, नाम, स्वरूप-माधुर्य, सौन्दर्य-चिंतन, कथन, श्रवण—ये उसका साधन।

चौथी बात दु:संग सर्वथा त्याज्य। इसका विरोधी जो कुछ है उसका जहाँतक बने परित्याग। भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्तिके मार्गमें जो कुछ भी बाधक हैं वह साराका सारा दु:संग है चाहे उसका नाम सत्संग हो, चाहे उसका नाम सम्पत्ति हो, चाहे उसका नाम धन हो, मान हो, कीर्ति हो, अधिकार हो, स्वर्ग हो, सुख हो, भोग हो, संतपना हो, कुछ भी हो जो भगवत् प्रेमके मार्गमें विरोधी उसका त्याग करें। जो भगवत्प्रेमके मार्गमें बाधक उसका संग दु:संग और दु:संग सर्वथा त्याज्य है।

बरू भल बास नरक कर ताता, दुष्ट संग जनि देइ विधाता।

नरकमें रहना अच्छा क्योंकि नरकमें रहनेसे, नरककी पीड़ाओंको भोगकर हम अपने कर्मोंके ऋणसे मुक्त होते हैं। लाभकी चीज है। पर बुरे समयमें अगर हमारे मनमें बुरे कर्मोंमें प्रवृत्ति जाग उठती है तो न मालूम कितने नरकोंकी भूमिका बना लेते हैं। इसलिये बुरे संगकी अपेक्षा नरक भी अच्छा है। दु:संग—ऐसा साहित्य, ऐसी वस्तु, ऐसा संग, ऐसा खानपान, ऐसे वस्त्र। केवल मनुष्योंका संग ही संग नहीं होता। हमारे मनपर जो भी प्रभाव डाले वह सारा संग है। वह संग जिस किसी वस्तुका हो, जिस किसी परिस्थितिका हो, जिस प्राणीका हो, जिस पदार्थका हो वह सारा संग—वह सत्संग भी हो सकता है, दु:संग भी हो सकता है। जो भगवान्‌से हटाकर भोगोंमें लगा दे वह कुसंग और जो भोगोंसे हटाकरके भगवत्प्रेमकी ओर लगा दे वह सत्संग, वह साधुसंग। चार चीजें—ये ध्यानमें रहें। ये आज सीखनी हैं। इसके बाद गोपीभावकी जो प्राप्ति होनी बड़ी कठिन है। भोग-मोक्षकी आकांक्षा, मोक्षकी तो बात हमलोग फालतू जोड़ लेते हैं। अन्त:करणकी शुद्धि ये नहीं है। मामूली-मामूली भोगोंकी आकांक्षाओंको लेकर हम रात-दिन रोते हैं। ये अनुकूलता नहीं मिली, ये कम नहीं हुआ, यों हो जायेगा तो क्या होगा? ऐसी भी होनेवाली चीज जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं आत्माका, जो यहीं रह जायेगी। ऐसी भी बहुत छोटी-छोटी वस्तुओंके लिये जब हमारा चित्त अशान्त रहता है, रात-दिन दु:खी संतप्त रहता है तो मोक्षकी बात अलग। पर बात वहाँ मोक्षकी भी है—

भुक्ति मुक्ति स्पृहा यावत् पिशचीहृदिवर्तते।

जबतक भोग-मोक्षकी पिशाचिनी इच्छा हृदयमें वर्तमान है तबतक प्रेमका उदय नहीं होता। प्रेमका उदय होनेके लिये भोगोंकी आकांक्षाका परित्याग करना चाहिये। चार बातें—भगवत् प्रेमकी प्राप्ति जीवनका उद्देश्य, प्रेमकी प्राप्तिमें हम सबका अधिकार, भगवान्‌के नाम, गुण,

लीलास्वरूप, सौन्दर्य-माधुर्यका कथन, श्रवण, चिंतन ये साधन और दु:संगका सर्वथा त्याग—ये सावधानीकी चीज। ये चार चीज हम आज गोपियोंसे सीखें।

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावत् प्रेमसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत॥

(पद्मपुराण/पातालखण्ड ४६/६२)

एक युग्म गीत है भागवतमें। आगे चलकर बताया है उसमें। गोपियाँ अकेली रहती हैं तो क्या करती हैं? गोपियाँ जब श्रीकृष्ण चले जाते गोष्ठमें गाय चराने तो ये क्या करतीं अकेली? दूसरी चर्चा नहीं, दूसरा विषय नहीं, दूसरी स्मृति, दूसरा कथन नहीं तो इस प्रकार निरंतर भगवान्‌के चिंतनमें ही, भगवान्‌के कथन, गुण-श्रवण-गुणगानमें ही अपने जीवनको लगाये रखे। भगवान्‌की कृपासे अपने आप प्रेमकी प्राप्ति होगी।

❖❖❖

शुद्ध प्रेम श्रीराधाका है

शुद्ध प्रेम श्रीराधाका है नित्य पूर्ण, विभु नित्य अपार।
किन्तु देखता कभी नित्य, बढ़ता रहता पल-पल सुखसार॥
अति गुरु, वह सर्वातिशायि, अति गौरवमय, अत्यन्त महान।
गौरव-अहंकारसे विरहित किंतु पवित्र दैन्यकी खान॥
बढ़ी हुई वक्रिमा अनोखी आती उसमें बिना प्रयास।
किंतु सुनिर्मल, सरल, बढ़ाती नित शुचिता-सरलता-मिठास॥
नित्य विरुद्ध धर्म-गुण आश्रययुक्त शुद्ध राधा-अनुराग।
धन्य-धन्य प्रियतम-स्वभाव-अनुगत, नित शुचि विरागमय राग॥

(पद रत्नाकर/पद सं०-७३४)

वैराग्यरागके रसिक हो जाओ

श्रीमन्मदनगोपालं वृन्दारण्य पुरन्दरम्।
श्रीगोविन्दं प्रपद्येहं दीनानुग्रह कारकम्॥
वन्देमुकुन्दमरविन्द दलायताक्षं कुन्देदुशंखदशनं शिशुगोपवेशम्।
इन्द्रादिदेव गणवन्दित पादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेव सूनुम्।
नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्द हास्यं।
कनकरुचिदुकूलं चारुवर्हाव चूलं
कमपि निखिल सारं नौमि गोपीकुमारं॥
वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्ब फलाधरोष्ठात्।
पुर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने॥

कल गंगातट पर जो बात हुई थी उसमें अंतमें ये कहा गया कि जो अपने सर्वस्वको जलाकर उसके भस्मावशेषपर नृत्य कर सके, नाच सके वह इस प्रेमके मार्गपर आवे। इस सम्बन्धमें एक सज्जनने स्पष्टीकरण करनेके लिये कहा है।

ये एक प्रकारकी अलंकारिक भाषा है। इसका अर्थ ये है कि जबतक हमारे मनमें किसी दूसरी वस्तुकी आकांक्षा है वह आकांक्षा जबतक पूरी जल नहीं जाती, दूसरी वस्तुओंमें जो हमारी ममता है वह जबतक जल नहीं जाती—ये सर्वथा जला देनेका अर्थ किसी वस्तुको जलाना नहीं है। वस्तुओंमें, प्राणियोंमें, परिस्थितियोंमें जो हमारी आसक्ति और ममता है उनको जला देना है और उसके साथ-साथ जरा-सी भयानक बात मालूम देगी। परिस्थितियोंको जलानेका

अर्थ समझनेमें जो कुछ भी हमारी यहाँ लौकिक, भौतिक, साम्पत्तिक, शारीरिक और यश कीर्ति सम्बन्धी परिस्थितियाँ हैं उनपर कितनोंकी ओरसे सर्वथा लापरवाह हो जाना होगा। इसीका संकेत है।

उद्धवजीने श्रीगोपांगनाओंके सम्बन्धमें ये बतलाया कि वे जो चीज परम दुर्लभ होती है त्याग करनेके लिये। कोई भला आदमी उनका त्याग नहीं कर सकता। या तो कहता है कि वह अत्यन्त निकृष्ट है या इस स्वजन और आर्यपथकी सीमासे बाहर जो निकल गया। गोपियाँ निकृष्ट तो थीं नहीं। जितना भी स्व है, जिस स्वको हम अपना कहते हैं वह सारा अपना जन, अपना मन, अपना धन, अपना तन ये सब यदि बिलकुल विपरीत परिस्थितिमें आ जाय और प्रेमकी प्राप्ति हो, भगवत्प्रेमका उदय हो, उसमें अत्यन्त आनन्दकी उपलब्धि होना—यही उसके भस्मावशेषपर नाचना है। जैसे किसी आदमीकी लोकमें बहुत प्रसिद्धि है, बड़ा आदर है, किसी आदमीके पास लोकमें बहुत बड़ा अधिकार है, पद है, किसीके पास बहुत कीर्ति है, यश है। किसीके पास बहुत धन-सम्पत्ति है। जगत्‌में हमारी क्या कीर्ति थी, जगत्‌में हमारा कितना ऊँचा अधिकार था। हम कितने सुखसे, कितने आरामसे जीवन बिताते थे। अब ये सब नहीं रहा, उसके विपरीत हो गया—यह दुःख होता है। ये दुःख ममता और आसक्तिका सूचक है। दुनियामें बहुतोंकी चीज जाती है हम नहीं रोते, हमको दुःख नहीं होता। जिस वस्तुमें, जिस परिस्थितिमें, जिस प्राणीमें हमारी ममता होती है, हमारी आसक्ति होती है उसके नष्ट होनेपर हमें दुःख होता है। ये ममता और आसक्ति जहाँ-जहाँपर हैं वहाँ-वहाँ पर अपनापन है—'मेरा'। ये 'मेरा' साराका सारा जहाँ न रहे वहाँ भी अगर भगवत्प्रेम मिलता हो, मिल गया हो, उसका उदय हो गया हो तो ये न मिलना और नष्ट हो जाना अत्यन्त और अत्यन्त आनन्दका साधन बन जाता है। नाच नहीं सकता आदमी अपनेको जलाकर, उसकी राखपर वही नाचता है जो उस भस्मावशेषपर नाचनेमें आनन्दका अनुभव करता है—

चहौं न सुगति सुमति सम्पत्ति कछु, ऋद्धि सिद्धि विपुल बड़ाई।

तुलसीदासजी बहुत मर्यादी भक्त हैं पर वे जब प्रेमपर बोलते हैं तो कहते हैं कि ये पाँच चीजें लोगोंको बहुत बड़ी प्रिय होती हैं। सुगति-सद्‌गति हो, मोक्ष हो, सुमति हो—अच्छी बुद्धि, लोग बुद्धिमान कहें, धीमान कहें, स्थिर बुद्धि कहें, अच्छी बुद्धि, सम्पत्ति—लौकिक सम्पत्ति, दैवी सम्पत्ति—ये सम्पत्ति, ऋद्धि-सिद्धि—जिस किसी कार्यको हम करें उसमें सफलता प्राप्त हो जाय और वह सफलता सदा बनी रहे और अनन्तकालके लिये, दीर्घकालके लिये जगत्‌में हमारी यश-कीर्ति फैल जाय यही चीजें अच्छे-अच्छे पुरुषोंको सबको मान्य होती हैं। सबको वाञ्छनीय होती हैं। सब इनको चाहते हैं और तुलसीदास कहते हैं 'चहौं न'—मैं नहीं चाहता। क्या चाहते हो? कहते हैं—ये सब चाहें चली जायँ, ये सब चाहें न मिलें, इन सबका अभाव हो जाय, ये सब जो मिली हुई हैं इनके जानेकी तैयारी हो जाय, नष्ट हो जायँ परन्तु मिले बदलेमें क्या?

'हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ अनुदिन अधिकाई'—बड़ा सुन्दर विवेचन है—ये हेतु रहित अनुराग—यही प्रेमका एक लक्षण है। जिसमें कोई हेतु हो, जिसमें गुण-दर्शन हो। किसीमें गुण देखकर उसके प्रति जो प्रेमकी भावना होती है वह गुणसे प्रेम है। विशुद्ध प्रेम नहीं। गुण-जनित प्रेम जबतक गुण दीखेगा तबतक है। गुण न दीखनेपर नहीं। कल महाप्रभुका एक श्लोक कहा था—

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मामदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा व विदधातु लम्पटो मत्प्राणनायस्तु स एव ना परः॥

(शिक्षाष्टक/८)

यहाँपर गुण-दर्शनका अभाव है। चाहे वे हमारे प्रियतम हमको हृदयसे लगाकर प्यार करें और चाहे ठुकरा कर हमें गिरा दें।

चाहे वे मिलें और चाहे कभी न मिलकर, अदर्शनाद्—कभी दर्शन न देकर हमारे हृदयको तोड़ दें, हमारे मर्मपर आघात करें और जो कुछ भी करें, उनके मनमें जो कुछ आवे जैसे करें पर हमारे तो वही हैं प्राणनाथ दूसरा कोई नहीं। इस प्रकारसे—

'हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई'

(विनय-पत्रिका/१०३)

जहाँ पर हम गुण देखकर प्रेम करते हैं, वहाँ गुण न रहनेपर नहीं होता। गुण न दीखनेपर नहीं होता। गुणोंका दीखना ये रागके आधीन है। ये बहुत समझनेकी बात है। जहाँ राग होता है वहाँ दोष भी गुण होते हैं और जहाँ द्वेष होता है वहाँ गुण भी दोष दीखते हैं। जब आँख बदल जाती है तो गुण दर्शन चाहे जब बदल सकता है। जब प्रेमास्पदमें अपने आपका समर्पण हो जाना। एक देशप्रेमी हम अपने आपको मानते हैं, मानना बड़ा अच्छा। पर देशका स्वार्थ और हमारा स्वार्थ अगर अलग-अलग हो तो देश सेवा नहीं होगी। जहाँ हमारा स्वार्थ देशके स्वार्थसे अड़ेगा और अगर हमारा स्वार्थ विजयी हो गया तो हम देशको डुबो देंगे—स्वाभाविक बात है। देशात्मबोध ही देशप्रेम है। जबतक हम अपना स्वार्थ, अपनेको उस देशके स्वार्थसे जरा-सा भी अलग मानेंगे। देशकी सेवामें हमको क्या मिला? यहीं देशकी सेवाका सिद्धान्त नष्ट हो गया। हमको क्या मिला? देश प्रेमीके द्वारा ये प्रश्न नहीं हो सकता। वह कहता है—'देश मैं हूँ', देशको जो मिला, वह मुझको मिला। देशकी जो हानि हुई वह मेरी हानि हुई। देशके साथ मेरा तादात्म्य है। इसी प्रकार प्रेमीका प्रेमास्पदके साथ तादात्म्य हो जाता है वह दे क्या? वह तो अपना काम अपनेआप यदि कोई करता है तो वह दान करना मानता है क्या? किसी पर उपकार किया मानता है क्या? अपने खानेके लिये आप खाना बनाता, पेट भरता वह मानता है क्या? कि मैंने बड़ा दान किया,

मैंने किसीका उपकार किया? अरे, अपना काम आप किया। किसी पर एहसान नहीं, कोई बदला पानेकी कोई आकांक्षा नहीं इसका प्रश्न ही नहीं होता।

इसी प्रकार प्रेमास्पदके साथ जब प्रेमीका तादात्म्य हो जाता है प्रेमरसके द्वारा तो स्वाभाविक उसका अपना कुछ नहीं रहता है। बोले—दर्शनके द्वारा मुझको सुखी करें क्योंकि मैं प्रेम करता हूँ—ये मेरा स्वार्थ जबतक अलग है तबतक वह विशुद्ध प्रेम नहीं है। इसको हम किसी अंशमें भक्ति जरूर कह सकते हैं। भक्ति जरूर है पर प्रेम नहीं। प्रेममें ये 'स्व' जो है उस प्रियतममें जाकर मिल जाता है। प्रियतमका स्व अपना स्व बन जाता है। इसलिये उस स्वका अर्थ अपना अर्थ बन जाता है। उस स्वकी स्थिति अपनी स्थिति बन जाती है। ऐसी अवस्थामें स्वाभाविक ही वहाँ—'मैं दे रहा हूँ' ये प्रश्न आता ही नहीं। 'मैं' का सबकुछ जल गया। 'मैं' का सबकुछ जल गया और जो अलग 'मैं' था किसीके द्वारा सुख-दुःख प्राप्त करनेवाला 'मैं' जल गया—यही सर्वस्वका जल जाना है, और इस सर्वस्वके जल जानेपर, उस प्रेमकी स्थितिमें जो एक आत्यन्तिक आनन्दकी अनुभूति होती है स्वाभाविक—वही भस्मावशेषपर नाचना है। इसमें तैयारी क्या करनी है? ये बहुत कहनेकी चीज नहीं है। इसलिये कुछ कठिन ज्यादा है क्योंकि इसमें त्यागकी पराकाष्ठा होती है।

भगवत्-प्रेम सर्वथा और सर्वदा सर्वस्व त्यागमूलक है।

'सर्वत्याग करे करे कृष्णभजन'—चैतन्यने कहा कि समस्त, सबका त्याग करके—लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म इन सबका परित्याग करके जो श्रीकृष्णका भजन करे, सेवन करे वह इस प्रेमका अधिकारी है। ये अच्छा इसलिये कि इसके द्वारा हम कुछ भी त्याग सीखें। प्रेमकी पाठशालामें हमारा प्रवेश हो जायेगा। हम कुछ प्रेम प्राप्त करना सीख लेंगे।

ये भोगकी प्राप्तिमें प्रेमका अन्तरभाव जो मनुष्य करता है ना ये सर्वथा विभ्रममें है, बड़ी भ्रान्ति है, बड़ी भूल है। भोगोंके रहने न रहनेमें आपति नहीं पर वे भोग अपने लिये अगर रहते हैं उन भोगोंसे अपनी सुखकी कल्पना कहीं रहती है तो वह प्रेममें कलंक है। प्रेम नहीं है। भोग यदि प्रेमास्पदके सुखकी सामग्री होकर रहें तो भले ही रहें। अपनेसे उनका विनियोग, उनका प्रयोग सर्वथा और सर्वदा एकमात्र प्रियतम सुखमें होता है। भगवान्ने कहा—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपाहितम्।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ़प्रेमभाजनम्॥

निगूढ़ प्रेमका भाजन केवल श्रीगोपांगनायें हैं—क्योंकि उनका जीवन, उनका श्वास, उनका सारा का सारा जीवनका अंग-प्रत्यंग मेरी उपासनाके लिये हैं।

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते'(गीता/९/२२)—दूसरेके अस्तित्वकी जिसके मनमें कल्पना नहीं, इस प्रकारका जो अनन्य है वो नित्याभियुक्त होकर अपने प्रत्येक कार्यमें, अपनी प्रत्येक स्फुरणामें, कार्यमें नहीं मनमें उठनेवाली प्रत्येक स्फुरणामें जिसका लक्ष्य रहता है पर्युपासना—प्रियतम भगवान्की सेवा, प्रियतम भगवान्को सुख पहुँचानेका ही एकमात्र स्वभाव—ये जहाँपर है वहाँपर प्रेम खिलता है। वहाँपर प्रेमका विकास होता है। जहाँ अनन्यता नहीं है दूसरोंके लिये—दूसरे पदार्थोंके लिये, दूसरे स्वके लिये, दूसरी वस्तुओंके लिये, दूसरी परिस्थितियोंके लिये, दूसरे प्राणियोंके लिये हमारा जीवन, हमारे जीवनकी ममता, हमारे भगवत्प्रेमकी ही आवश्यकता है और प्रेम ही उसकी पूर्ति है, भगवत् प्रेम ही साधन है और भगवत्प्रेम ही सिद्धि है। 'साधन सिद्धि राम पद नेहू'— भगवत् चरणारविन्दका प्रेम ही साधन और भगवत्चरणारविन्दका प्रेम ही साध्य—सिद्धि, सफलता। साधन और सिद्धि ये दोनों प्रेम

होते हैं।

इस प्रेममें जहाँ किसी प्रकारसे भी स्वसुख आ जाता है अपना स्वार्थ अलग—ये तो बहुत नीची श्रेणीमें, जहाँ मनुष्य परोपकारार्थ त्याग करता है वहाँपर भी अगर दूसरेको 'पर' मानकर उपकार करता है तो वहाँपर भी प्रेम नहीं है वो भी उसे किसी अंशमें दया कह सकते हैं, अपनी चीज कह सकते हैं, वो उत्तम श्रेष्ठ कर्म कह सकते हैं पर वो प्रेम नहीं क्योंकि प्रेममें 'पर' नहीं होता और उपकार नहीं होता। परोपकारी नहीं होता प्रेमी क्योंकि उसके लिये 'पर' कोई रहा नहीं और एक जो परमात्मा था 'पर'—माने 'परम'—उसके साथ उसका तादात्म्य हो गया। उपकार किसका करे? उसके पास है क्या जिससे उपकार करे? वो किसको दे क्या? और कैसे दे? उसके पास न अपना कुछ है न उसमें कोई देनेकी प्रेरणा है और न वो देता है। वो तो स्वाभाविक और स्वाभाविक प्रियतमके सुखका साधन बना हुआ है सहज स्वाभाविक। ये प्रियतमके सुखकी सहज स्वाभाविक साधना—ये प्रेम साधना और प्रियतमका सुख ही जीवनका स्वरूप—ये प्रेमकी साधनावस्था।

इस प्रेममें त्याग ही त्याग है पर इसमें रस है। रस क्या है? यद्यपि इसमें वैराग्य है, भोग-वैराग्य है पर वो वैराग्य त्यागमूलक नहीं है। त्याग तो उसमें अपने आप हो गया है। ये रागमूलक वैराग्य है ये विचित्र शब्द मालूम होगा आपको। रागमूलक वैराग्य माने रागका न रहना रागके लिये—विचित्र बात है रागमूलक वैराग्य। बहुत सुन्दर संकेत है भागवतके माहात्म्यमें—**'वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः'**—ये एक भागवतके माहात्म्यमें बड़ा सुन्दर संकेत है। वैराग्य रूपी रागके रसिक बनो। वैराग्यमें एक राग है, एक रस है उस रसके रसिक बनो वहाँ रसिकता है। वैराग्यमें रसिकताका तो बड़ा विरोध। नहीं समझमें आता है ना जहाँपर, वहाँ कहते हैं वैराग्यके साथ रसिकताका क्या सम्बन्ध? और ये साफ शब्द

हैं 'वैराग्य राग रसिको भव'—आज्ञा देते हैं—वैराग्य रागके रसिक हो जाओ तो ये कहाँ होता है? जहाँ भगवत्प्रीतिमूलक वैराग्य होता है, रागमूलक वैराग्य होता है। भगवान्‌का राग जहाँ सारे रागोंको खा जाता है भगवान्‌की प्रीति, भगवान्‌की आसक्ति जहाँ सारी प्रीतियोंको और सारी आसक्तियोंको आत्मसात् कर लेती है, अपने अन्दर मिला लेती है, उनका अस्तित्व नष्ट कर देती है। वहाँ एक विशेष रसकी प्राप्ति होती है वो रस रागमें है ही। यहाँ वैराग्य तो हो गया स्वाभाविक। जगत्‌के पदार्थोंका जो त्याग हुआ, पदार्थोंकी ममता आसक्तिका त्याग हुआ ये उनमें दोष दुःख देखकर नहीं वो तरीका दूसरा—

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु॥

× × × × ×

जन्ममृत्यु जरा व्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्॥(गीता १३/९/८)

वो भी एक तरीका है जिसमें भोगोंसे विराग होता है पर वहाँ भोगोंमें विराग इस दुःखमूलकताको लेकर, दुःखदोष देखकर भोगोंके अस्तित्वका सत्ताका लोप करके नहीं हुआ पर वो भगवत्‌चरणारविन्दका उसमें जो प्रेम है उस प्रेमके सामने, इन सबका परित्याग अपने आप हो गया। ये सब रहे नहीं। सूरज उदय होनेपर अन्धकार, दीपकके प्रकाशकी कोई भी आवश्यकता नहीं, ज्योति कुछ रहती ही नहीं, रातको जो दीपक बहुत बड़ा काम करता है—प्रकाश देता है, सूर्योदय होनेपर वो चाहे दिनभर जलता रहे, कहीं प्रकाश भी है ये भी ध्यानमें नहीं आता। कई बार दिनमें बत्ती रह जाती है जलती हुई, देखनेपर मालूम होता है कि बड़ी बत्ती रह गयी बल्ब जल रहा है, जरा बुझा दो। स्विचको नीचा कर दो। लेकिन यदि न दीखे तो बत्ती जले कोई बात नहीं। इसी प्रकार भोगोंमें वैराग्य यहाँपर दुःख दोष देखकर अथवा उसकी सत्ताका विरोध करके विचार विवेकके द्वारा नहीं करना पड़ता, ये एक विचित्र

मार्ग है जहाँपर भगवान्‌का राग भगवान्‌में प्रीति, भगवान्‌में आसक्ति—ये आसक्ति सारे पदार्थोंकी सत्ताको नष्ट कर देती है, उनकी आसक्तिकी बात तो अलग रही किसी तरफ मन जाता ही नहीं। किसी चीजमें उनकी महत्ता बुद्धि तो अलग रही, सत्ता बुद्धि नहीं रहती। सबको विस्मृत करके, सबका लोप करके, सबको जलाकर वो इस प्रेम राज्यका आनंद प्राप्त करता है तो वहाँ एक रस है। इसलिये यह मार्ग जहाँ बहुत कठिन है वहाँ बहुत सुन्दर भी है। भगवान्‌के दिव्य सौन्दर्य माधुर्यका निरंतर चिंतन करके उसके प्रति राग करना होगा। जो राग वह रसीला राग है और वो राग परिपक्व होनेपर ये भोगरागको खा जायेगा। भगवान्‌के दिव्य सौन्दर्य माधुर्यमें उनकी दिव्य लीलाओंमें ये कहा है कि ये भगवान्‌ने लीला क्यों की? अवतार क्यों लिया? कहते हैं कि ये परमहंस अमलात्मा मुनियोंके मनोंमें भक्ति प्रेमका उदय करनेके लिये, परमहंस अमलात्मा मुनियोंके लिये जिनके मलोंका नाश हो गया। इस प्रकारके अमलात्मा जो महामुनि हैं परमहंस उन मुनियोंके मनोंमें भगवत्प्रेमका उदय करनेके लिये भगवान्‌की ये दिव्य मधुर सुन्दर लीलायें हुईं। इन लीलाओंका इन लीला-स्वरूपके सौन्दर्य माधुर्यका जो राग है ये इसकी प्रथम साधना है। इसीको इस उज्ज्वल रसकी भाषामें और कवियोंकी भाषामें कभी उसको नीचे दर्जेमें ले गये, पूर्वराग कहते हैं। पूर्वराग क्या है? ये भगवान्‌के सौन्दर्य माधुर्यपर, भगवान्‌की लीला रमणीयतापर, भगवान्‌के लीला लालित्यपर चित्तका आसक्त हो जाना, चित्तका राग संयुक्त हो जाना—ये इसका कारण है। इस साधनसे विराग करना नहीं पड़ता भोगोंसे, भोगोंकी सत्ता दीखने लगती है क्योंकि वो इस प्रकारका कि पहले पहले ये कल्पना होती है। परन्तु एक बड़ा सुन्दर सत्य है कि भगवान्‌की कल्पना और जगत्‌की कल्पना इन दोनोंमें तात्त्विक भेद है। हम कहते हैं कि यहाँ भगवान् हैं तो ये हमारी कल्पना है पर कल्पना चाहे हो भगवान् यहाँ हैं

ही। ये कल्पना सत्यमें सत्यके दर्शनका साधन है। पर यहाँ घोड़ा है, हाथी है या हमारा अमुक प्रेमी है तो हम चाहे कहते रहें, हम चाहे उसको ध्यानसे भले ही देखते रहें। हमारी ध्येयाकार वृत्ति चाहे उसे वहाँपर मान ले, देख ले पर वो है नहीं। पर भगवान् हमारी वृत्ति न भी देखें तब भी यहाँपर हैं और यदि हैं तो भगवान्में एक चीज और है भगवान् जो हैं ये केवल हैं नहीं ये सर्वभवन समर्थ हैं, सर्वसमर्थ हैं। सर्वभवन समर्थका अर्थ ये कि वो सबकुछ बननेमें शक्तिमान हैं। सबकुछ बन सकते हैं भगवान्। आज हमें जिस रूपमें, अपने मनके रूपमें उनको देखना चाहते हैं। हमने कल्पना की कि भगवान् मुरली मनोहर हैं, भगवान् ये धनुषधारी हैं, भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्मवाले हैं, भगवान् डमरू, त्रिशूल लिये हुए हैं, भगवान् सिंहवाहिनी होकर खड़े हैं। सब ठीक पर ये भगवान् सबकुछ ऐसेके ऐसे हमारी धारणाके अनुसार वहाँ हैं और उस रूपमें प्रगट हो सकते हैं। इसलिये ये भगवान्के अपने मनमें कल्पित सौन्दर्य माधुर्यपर जिनका चित्त आसक्त होता है उनके लिये उसी रूपमें सर्वभवन समर्थ, सर्वत्र व्याप्त भगवान् प्रगट हो जाते हैं। इसलिये मैं तो कहा करता हूँ, लोग कहते हैं कि ये मत कहा करो। लोग उसमें अनुचित लाभ उठायेंगे पर मैं समझता हूँ अगर किसीको स्वप्नमें भी भगवान्के दर्शन होते हैं उसे मिथ्या क्यों मानें अगर हम घोड़ेका ध्यान करते, आदमीका ध्यान करते, मकानका ध्यान करते तो मिथ्या था। ये भगवान् तो वहाँ हैं। हमारे ध्यानमें अगर वो आ गये तो वो तो हैं ही। वो तो आ गये। सत्य आ गये। हम उनको मिथ्या मानकरके, कल्पना मानकर ये उड़ा क्यों दें? हम सत्य मानें तो क्या होगा? हमारा वो सत्य, सत्यका प्रकाश होगा क्योंकि सत्य वहाँ है, सत्यका वहाँपर प्राकट्य कल्पनासे नहीं करना है, सत्यका विश्वास करके सत्यको प्रगट कर देना है। ये बहुत सुन्दर कहा करते हैं कि ये अद्वैतोपासक

बड़ी सुन्दर बात है कि ब्रह्मकी प्राप्ति करनी नहीं पड़ती। नित्य प्राप्त तत्वमें जो अप्राप्तिका भ्रम हो रहा है उसे मिटा देना मात्र है, वो तो है ही प्राप्त, नित्य प्राप्त है कभी उसका वियोग वियुक्त हुआ नहीं। नित्यप्राप्त भगवान्में, नित्यप्राप्त ब्रह्ममें जो अप्राप्तिका भ्रम है उसको छोड़ दो। शुकदेवजी महाराज गये जनकके पास। व्यासजीने बात तो वही कही थी पर जरा श्रद्धा। व्यासजीने कहा कि दूसरेके द्वारा उनका ठीक काम हो तो अच्छा है। जनकके पास भेजा। जनकके पास गये तो महलके दरवाजेपर पहुँचे तो वहाँ व्यवस्था पहलेसे हो गयी। व्यासजीने सब रचना करा दी। खबर गयी राजाके पास—शुकदेवजी पधारे हैं। राजाने कहा—वहीं खड़े रहने दो। सात दिन हो चाहे पन्द्रह दिन हो। शुकदेवजी ज्यों के त्यों खड़े रहे। न उनमें विकार आया, न क्रोध आया, न क्षोभ आया, न चित्त ऊबा। ज्योंके त्यों निस्तब्ध खड़े हैं। खबर पहुँची राजाके पास। राजाने पुछवाया, उसके सब खबरी लगे हुए थे, कोई विकार आया नहीं, क्षोभ हुआ नहीं, क्रोध हुआ नहीं, चित्त उकताया नहीं। अब राजाने दूसरी चीज की। बोले—इनको विनोद भवन भेज दो। जैसे हँसमुख खड़े थे उसी प्रकार खड़े हैं। वहाँ सब तरहके इन्द्रियोंके भोग्य पदार्थ मौजूद और पचास तरुणी स्त्रियाँ वे सेवामें वहाँ पर संलग्न। वहाँ गये तो वहाँ भी जैसे थे वैसे वहाँ। न उनको वहाँ कोई विषाद हुआ, न प्रतिकूलतामें विकार हुआ, न अनुकूलताका हर्ष हुआ। जनक महाराजने सोचा कि अब ये मालूम हो गया अधिकारी। तब उनको पास बुलाया पासमें, बुलाकर जनकने पूछा—महाराज क्यों पधारे? तो कहा—बोध प्राप्त करने ब्रह्मका। महाराजने कहा—आपको तो बोध है ही। हम देख चुके बोधका लक्षण आप जो मान रहे हैं कि मुझको बोध नहीं, ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं इस मान्यताको छोड़ दीजिये, प्राप्त ही है। जैसे नित्यप्राप्त आत्मस्वरूपमें अप्राप्तिका भ्रम अज्ञानावस्थाको सिद्ध करता है इसी प्रकार भगवान्

यहाँपर हैं। भगवान् हमारे अविश्वासके कारण प्रगट नहीं होते।

इस प्रेम साधनामें वैराग्य होता है पर वैराग्य वस्तुओंमें दुःख दोष दर्शनके द्वारा नहीं होता, उनकी सत्ताका ज्ञानके द्वारा, विवेकके द्वारा विलय करके नहीं होता। वह एक पद्धति है। इसमें होता है कि भगवान्के सौन्दर्य माधुर्यमें जो एक प्रबल राग होता है वह राग सारी वस्तुओंके रागको ही नहीं, उनकी सत्ता तकको मिटाकर अपना साम्राज्य वहाँपर विस्तार कर लेता है। ये फिर कैसे हो? इसका उपाय यह है कि सौन्दर्य माधुर्यको हमने देखा नहीं भगवान्का तो कौन सा काम करें? इसका उत्तर है कि जो आपके मनमें आवे भगवान्का रूप सौन्दर्य माधुर्य आप अपनी इच्छानुसार कल्पना कर लें और जहाँ आप चाहें वहीं भगवान्की कल्पना कर लें। क्या बात है? भगवान् वहाँ पहलेसे मौजूद हैं, आपकी कल्पनासे पूर्व भी क्यों? क्योंकि वह सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। उनकी सत्तामें कहीं कोई अभाव नहीं होता। दूसरी बात भगवान् सर्वभवन समर्थ हैं। वह सब कुछ बन सकते हैं। यहाँ अगर हम किसी औरका ध्यान करते, किसी सांसारिक वस्तुका तो वह न यहाँपर है और न कहीं और कहींसे वैसा बन सकती है, परन्तु भगवान् यहाँपर हैं और हम जिस रूपमें उनको देखना चाहते हैं, वही रूप वो बना लेनेमें समर्थ हैं, सारे रूप उनके हैं। इसीलिये वो जो रूप है, हम जो ध्यान करते हैं, हम जिसका चिन्तन करते हैं वह रूप हमारे सामने सत्य माननेपर सत्य रूपमें प्रगट होगा और भगवान्का रूप जब सत्य रूपमें प्रगट होगा तो उनके अन्दर जो दिव्यता है वह स्वाभाविक अप्रतिम सौन्दर्य है जो परम दिव्य, परम आलौकिक, वो अशेष सौन्दर्य माधुर्यका वो रसामृत समुद्र है वह वहाँपर छलकने लगेगा। क्योंकि उनका स्वाभाविक है। कोई आदमी आयेगा यहाँ प्रगट होगा हम चाहे उसको इसी रूपमें देखना चाहते हैं पर वो चाहे उसकी पोशाक दूसरी हो जाय पर वो ही रहेगा। एक बड़ा गौरवर्णका आदमी है उसको हमने कहा तुम इस पोशाकमें आओ, उसका गौर रंग कहाँ मिल जायेगा? काला कहाँ ढक जायेगा। भगवान् जब प्रगट होंगे तो अपने जो अप्रतिम उनका जो स्वाभाविक दिव्य रूप सौन्दर्य है उसकी छटा उसमें आ जायेगी तो हम तो निहाल हो गये। उसमें जहाँ राग हुआ, वो राग सारे रागोंको खा गया, वैराग्य अपने आप।

वहाँपर एक रसकी उत्पत्ति होती है, दर्शनमें रसकी उत्पत्ति, उसके चिन्तनमें रसकी उत्पत्ति, उसके ध्यानमें रसकी उत्पत्ति, उसकी प्राप्तिमें रसकी उत्पत्ति, उसके अध्ययनमें रसकी उत्पत्ति, अध्ययनमें कैसा सुन्दर मनोहर है।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् ।

ऐसा बढ़िया ऐसा रूप। इधर अपने ध्यानकी बात हुई थी तो मुझे तो बड़ा अच्छा लगा। मैं बोल रहा था पर मुझे बड़ा अच्छा लग रहा था। औरोंको भी अच्छा लगा होगा। न लगा हो तो उनकी बात। पर वहाँ कोई संसारको दुःखमय बनाकर छोड़नेकी बात कहे तो उतना अच्छा तो शायद नहीं लगेगा। वैराग्य उसमें भी होगा तो वैराग्य होगा। वह ऐसी चीज बदलेमें देगा कि फिर दूसरी तरफ राग होगा ही नहीं। वह चीज भगवान्के सौन्दर्य माधुर्यका जो राग है वो जिस वैराग्यको उत्पन्न कर देगा भोगोंसे वो वैराग्य फिर वैराग्य ही रहेगा क्योंकि जिस रागकी वस्तुको उसने प्राप्त किया है उसके सामने ये सदाके लिये फीका हो गया। सदाके लिये नगण्य हो गया। ये बड़ा सुरक्षित मार्ग है और इसमें अन्तमें बड़ी कठोर साधना होनेपर भी ये बड़ा सरल है। सबके लिये तो मैं ऐसा मानता हूँ कि ऐसा लोग अगर करने लगें तो उनको लाभ होगा पर मेरा आग्रह नहीं है जिसकी इच्छा हो करें और नहीं सिद्धान्तको कोई माने मैं तो ऐसे ही ऊटपटांग बोल देता हूँ। जो इसे सिद्धान्तके विरुद्ध मानते हों वो मानें। उनके लिये कोई आग्रह नहीं जिनको अच्छा लगे और जिनकी रुचि हो वो करें। न अच्छा लगे वो अपने घर हम हमारे घर। कोई आपत्ति है ही नहीं।

❖❖❖

रासका रहस्य

आदिपुराणका एक श्लोक है। अर्जुन और भगवान्‌का संवाद है। अर्जुनने पूछा कि आपको तत्वसे कौन जानता है? आपके मनकी बात तत्वतः कौन समझता है? आपकी सेवा, आपकी महिमा और आपकी श्रद्धाके स्वरूपको तत्वतः कौन समझता है? भगवान्‌ने उत्तर दिया—

मम माहात्म्यं मत्सपर्यां मत् श्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्वतः॥

तत्त्वतः तो चार बातें कहीं—मेरी महिमा, मेरी सेवा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनोगत भाव चारोंको तत्वतः केवल गोपियाँ जानती हैं और कोई नहीं जानता। गोपिका क्यों जानती हैं? और कोई क्यों नहीं जानते? इस चीजको समझना है गोपीभावमें।

जहाँ मनोगत भावकी जानकारी अच्छी तरहसे हो जाती है। वहाँ उनके मनके अनुसार कार्य अपने आप होता है। दो बात है प्रेममें—एक प्रेमास्पदके मनके भावका ज्ञान और दूसरा तदनुकूल जीवनका निर्माण। दो चीज, प्रेमास्पदके मनमें क्या है? उस बातको जबतक प्रेमी नहीं जानता तबतक वह उनके मनके अनुकूल पूरा नहीं बन सकता। और, कहीं किसीके मनकी कोई किसी कारणसे थोड़ी बहुत जान भी ले पर यदि उनके अनुकूल बननेकी अपनी इच्छा नहीं तो फिर काम नहीं होता। गोपियोंने क्या किया? गोपीभाव क्या है? अपने मनकी रुचि, अपने मनकी चाह, अपने मनकी आसक्ति, अपने मनके विचार, अपने मनकी समझ, अपने मनकी सामग्री, अपने मनके पदार्थ, अपने मनकी ममता, अपने मनका अहं और अपना स्व—इन सबका प्रियतम प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी इच्छामें त्याग कर दिया। श्रीकृष्णकी क्या इच्छा है—वही इनकी इच्छा।

श्रीकृष्ण क्या चाहते हैं? वही इनकी चाह। श्याम ही हमारे वस्त्राभूषण हैं, श्याम ही हमारे भोजन-पान। इसका अर्थ क्या है? सिखानेकी चीज नहीं है। श्यामसुन्दरको जो वस्त्र और आभूषण प्रिय लगते हैं, जिसमें श्याम समाये रहते हैं। जिन वस्त्रोंमें श्याम समाये वो वस्त्र हमारे वस्त्र, जिन आभूषणोंमें श्यामसुन्दर समाये वो आभूषण हमारे आभूषण, जिस भोजनमें श्यामसुन्दर समाये वो हमारा भोजन और जिस काममें श्यामसुन्दर समाये वही हमारे पूजाकी चीज। अर्थात् जितनी भी चीजें प्राणि पदार्थ, परिस्थिति सबके सब श्याममय जहाँ हैं वहाँ हम हैं।

श्यामके अतिरिक्त, श्यामसुन्दरके अतिरिक्त न भोगका महत्व है, न त्यागका महत्व है। न बन्धनका महत्व है, न मोक्षका महत्व है, न गतिका महत्व है, न अगतिका महत्व है। श्यामसुन्दरकी जिस प्रकारकी जो जब जैसी रुचि—बस वही जीवनका सुन्दर स्वरूप गोपीका। गोपीका जीवनका सुन्दर स्वरूप वह यही कि जो श्यामसुन्दरकी रुचि, श्यामसुन्दरकी इच्छा, श्यामसुन्दरका मन। गोपीधर्म क्या है? श्यामसुन्दरकी इच्छा, गोपीका लोक श्यामसुन्दर, गोपीका परलोक श्यामसुन्दर, गोपीकी गति श्यामसुन्दर। उसके द्वारा जो कुछ भी होता है वह होता नहीं, वह श्यामसुन्दरके द्वारा होता है, वह करती नहीं। श्यामसुन्दरका जो सुख है वह सुख बन गया गोपीका सुन्दर रूप।

गोपीका जो सुन्दर रूप है ये सुन्दर क्यों है? क्या कोई बाहरी सुन्दरता गोपीकी सुन्दरतामें है? जिस प्रेममें बाहरी सौन्दर्यका अनुसंधान है। वहाँ प्रेम नहीं है। एक गन्दी चीजपर मनका आकर्षण है। बाहरी सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं। यद्यपि गोपीकी बाहरी सुन्दरता भी अप्रतिम है। जिससे राधाको देखकरके सत्यभामा मूर्छित हो जाती हैं तो उन राधाकी बाह्य सुन्दरताका कोई भी कहीं तुलनामें आ सके ऐसा पदार्थ नहीं तथापि श्रीकृष्ण बाह्य सौन्दर्यको नहीं

देखते। वो देखते हैं भाव सौन्दर्यको। वो भाव सुन्दरता जहाँपर है वही सुन्दर रूप है। गोपीका सुन्दर रूप क्या है? गोपीका सहज सुन्दर रूप क्या है? श्रीकृष्ण श्यामसुन्दरका सुख, बस उनका सुख, उनकी रुचि, उनकी इच्छा—ये गोपीका स्वरूप है, सुन्दर रूप है। यही इसका सौन्दर्य है। इस सौन्दर्यपर श्यामसुन्दर रीझ जाते हैं और रीझकर क्या करते हैं? बड़ी विलक्षण बात है। जहाँसे रासका प्रारम्भ होता है। बड़ी विलक्षण बात है उस गोपीके सुन्दर स्वरूपपर रीझकर श्यामसुन्दर स्वयं उनसे मिलनेको उत्सुक हो जाते हैं और वो शारदीय रात्रियोंमें उनको भगवान् आकर्षण करते हैं। आवाहन करते हैं मुरलीकी ध्वनिसे। वेद नहीं सुन पाते। एक मुरलीकी वो ध्वनि है जो ध्वनि सारे ब्रह्माण्डमें फैल जाती है। ब्रह्मलोक तकमें जाती है और यहाँ वो अपनी मधुरिमासे अपने माधुर्यसे सबको सुनाई पड़ी। उस मुरली ध्वनिको सुना उन श्रीगोपांगनाओंने जिनको सुनाया गया, जिनके लिये बजायी गयी। बड़ी विलक्षण बात है। बड़ी विलक्षण बात यह है कि यद्यपि गोपीप्रेममें ज्ञानका अभाव नहीं है, परन्तु इस गोपीप्रेममें ज्ञान सर्वथा छिपा हुआ है। इसलिये ये कहनेमें संकोच नहीं कि जिस समय श्रीगोपांगनाएँ श्यामसुन्दरके आवाह्नपर सबकुछ भूलकर अस्त-व्यस्त कपड़े पहनकर, अस्त-व्यस्त गहने पहनकर जगतकी, घरकी, घरवालोंकी, बच्चोंकी, कोई भी स्मृति न रखकर चल पड़ीं, उस समय वो भगवान् समझकर नहीं चली थीं प्रेमास्पद समझकर चली थीं। वो भागवतमें स्पष्ट है। परन्तु ये बात कही नहीं जाती क्योंकि हमारी गन्दी आँखें, गन्दे विचार यहाँ तक पहुँचते नहीं कि विशुद्ध अनुराग किसे कहते हैं? विशुद्ध प्रेम जहाँ पर है वहाँपर उस ऐश्वर्यके लिये स्थान नहीं है कि हम भगवान्की पूजा करते हैं। वहाँपर पूजा होती है प्रेष्ठकी, अपने प्रियतमकी और उस पूजामें केवल एक भाव रहता है कि प्रियतमको सुख हो, बस।

अब ये पूजाके भी विभिन्न प्रकार हैं—एक पूजा होती है आज्ञा देनेपर। एक पूजा होती है संकेत पाकर। एक पूजा होती है रुचि समझकर और एक पूजा होती है स्वाभाविक स्वरूप बनकर। गोपीको भगवान् आज्ञा नहीं देते। गोपीको भगवान् संकेत नहीं करते और गोपीको रुचि जाननेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि गोपीके मनमें भगवान्का मन आकर निवास करने लगा। विचित्र बात है भगवान्का मन गोपीके अन्दर प्रवेश करके, रहनेके लिये निरंतर लालायित, आतुर, उत्सुक है, क्यों उत्सुक है कि वो मन वहाँसे निकल गया। गोपीने अपने मनको छोड़ दिया। अपने आपको जहाँ कोई खो देता है वही प्रेमको पाता है। जहाँ अपने आपको रखता है, अपने अहंकारको, अपनी ममताको, अपनी रुचिको, अपने भावको वहाँ प्रेमको प्राप्त नहीं कर सकता।

गोपीप्रेम वास्तवमें तो क्या चीज है? गोपी भगवान् हैं गोपीप्रेम भगवान् हैं और वो प्रेमास्पद भगवान् हैं। वो रासमें आस्वादक और आस्वाद्य दो भिन्न-भिन्न वस्तु नहीं है। वही आस्वाद्य है, वही आस्वादक है वो ही आस्वादन है। रस वही है और रसके भोक्ता वे ही हैं और रसके विस्तारक वे ही हैं।

ये रस जो है मूल है रासका। जहाँ एक रस विभिन्न रूपोंमें, विभिन्न भावोंमें, विभिन्न प्रकारसे, अनेक विचित्र-विचित्र गतियोंको लेकर लहराता है, उच्छलित होता है, तरंगित होता है उसका नाम रास है। रासमें क्या है? रासमें है पूर्ण समर्पणका एक नमूना। हमलोगोंके लिये वास्तवमें ये नमूना नहीं है। वस्तु तत्व है। तत्व है; हमलोगोंके लिये ये एक नमूना है कि वो रात्रिका समय, अन्धकारमय रात्रि मृत्युकी ज्योत्सनामें रात्रि है परन्तु निर्जन अकेलेमें तमाम सारी ममता, सारी आसक्ति, सारा राग सब कुछ भूलकर, सबकुछ छोड़कर। हमलोग महाराज प्रेमकी बात करते हैं पर जरासी सांसारिक कोई विपरीतता, प्रतिकूलता आ जाय तो चित्त उद्विग्न हो जाता है वहाँ तो ये संसार है नहीं।

ये कोई कोई कहते हैं। ठीक कहते हैं कि ये काम विजय लीला है रासमें। पर मेरे ध्यानमें ये बात नहीं आती। कामका कहीं प्रवेश हो तो कामलीला हो। जिस क्षेत्रमें कामका प्रवेश ही नहीं है वहाँ काम विजय कैसा? वहाँ तो विशुद्ध और विशुद्ध अनुराग है। वहाँपर काम नहीं। काम तो मनमें रहता है किसी अपने सुखकी प्राप्तिकी जहाँ इच्छा होती है उस क्षेत्रमें। वहाँ काम नहीं रह पाता। कामके लिये स्थान होता है—निजसुखकी वाञ्छाका क्षेत्र। वो जहाँ नहीं है वहाँ काम नहीं है। गोपीके क्षेत्रमें, रासमण्डलमें कामका प्रवेश नहीं है। कामाधिकार यहाँ नहीं—बहुत दूर बहुत दूर। तो अन्त:करणकी शुद्धि, जब वैध भक्ति थी तभी हो चुकी। यहाँ तो काम नहीं है पर यहाँ क्या है? प्रेम, विशुद्ध प्रेम, तो इसका नाम काम हो जाता है। उसका नाम राग हो जाता है, उसका नाम ममता हो जाता है, उसका नाम आसक्ति हो जाता है, कहीं उसका नाम प्रणय हो जाता है, कहीं राग हो जाता है। विभिन्न नामोंसे एक भगवत् प्रेम विशुद्ध प्रेम रासमण्डलमें खेलता है और कुछ नहीं। इसलिये जहाँ भी इस विशुद्धिमें जरासी भी कोई कालिमाकी आशंका है—कालिमा लेश नहीं—आशंका है, वहाँ भी इसमें प्रवेश नहीं होता।

कथा आती है भगवान् शंकर रासमण्डलमें गोपीमण्डलमें प्रवेश नहीं कर पाते। नारद नहीं कर पाते और स्वयं अर्जुन वो अर्जुन जिनके लिये भगवान्ने 'इष्टोऽसि मे दृढ़मिति' ये कहा। सखा जिसको माना- जिसके रथके घोड़ोंकी लगाम हाथमें ली। जिसके शत्रुको अपना शत्रु कहा—उन अर्जुनने जब कहा कि महाराज! मुझे रासमण्डलमें प्रवेश करनेका अधिकार मिले, वो जीवन मिले। बोले—भाई, कठिन है, कठिन है, बड़ा आग्रह किया तब बस एक दिनके लिये, एक दिनके लिये अर्जुनको अधिकार मिला रासमण्डलमें प्रवेश करनेका और वो भी गोपीभावकी मूर्तिमान प्राप्ति करा देनेके बाद।

गोपीभाव! गोपीभाव माने प्रेम, गोपीभाव माने अपने आपको खो देना, गोपीभाव माने प्रेमास्पद श्रीकृष्णका सुख, गोपीभाव माने उसकी रुचि। गोपी क्या है? यह समझनेकी चीज है जहाँ त्यागकी पराकाष्ठा कहनेमें भी एक उसकी सीमा आ जाती है। गोपी क्या करती है? राधा-माधवका जो सुख विहार है दिव्य उसका आयोजन करती है, उसमें सेवा करती है स्वयं कुछ नहीं चाहती। कुछ नहीं चाहती माने अब ऐसे स्थानमें कहाँ प्रवेश हो किसी द्वेषका, कहाँ प्रवेश हो किसी कामका? ये गोपीभाव कहाँसे आया? ये आया राधासे। इसीलिये कहा है कि राधाकी जो कायव्यूहरूपा है वे हैं गोपियाँ।

राधा कहाँसे आयी? राधा श्रीकृष्णसे। श्रीकृष्ण स्वयं ही राधा-भावमें अपने आपको परिणत करके राधाके द्वारा श्रीकृष्णकी सेवाका सुख कैसा होता है? उसका स्वयं ये अनुभव करना चाहते हैं और ये उनकी अनादि इच्छा और अनादि मनमें आया था। ये नहीं जाना जाता। नित्य हो जाता है। नित्य श्रीकृष्ण कैसे राधा बने? नित्य और नित्य राधा बनते हैं और नित्य राधासे श्रीकृष्णका लीला विहार होता है और नित्य रास चलता है। ये इसीमें जो प्रेमवैचित्यकी दशा होती है इसमें ये राधा माधव हैं, माधव राधा हैं और नित्य, नित्य समीपतामें नित्य वियोगका अनुभव है। वियोगमें संयोगका अनुभव है। चैतन्य महाप्रभुकी गम्भीरालीला इसका उदाहरण है। इसीपर उनका अन्तिम जीवन बीता। राधाभावकी गोपीभावकी प्राप्तिके लिये करना क्या है? ये बात समझनेकी है। दो चीज करनेकी है—

अगर किसीको गोपीभावकी प्राप्ति चाहिये तो दो चीज करनी है। पहली चीज है—श्यामसुन्दरके भावोंको जाननेकी प्रबलतम इच्छा—एक बात और दूसरा श्यामसुन्दरके अनुकूल, उनके मनके अनुकूल बननेके लिये अपना मैं, अपना मेरा, अपना सबकुछ, अपना विचार,

अपनी बुद्धि, अपना मन, अपनी समझ, अपनी रुचि—ये सब त्याग देनेका पूर्ण निश्चय। जहाँ पर भी इसमें कमी है वहाँपर भगवान्‌के भावकी जानकारी नहीं होगी। भगवान् अपने मनका भाव जगायेंगे नहीं। वो जनाते कहाँ हैं? जहाँ और सब जानना छूट गया, ज्ञानका अभाव हो गया। ज्ञानका अभाव कैसे—अज्ञान नहीं है। ज्ञानके अभावका अर्थ अज्ञान नहीं है। कर्मके अभावका अर्थ स्थिर रहना नहीं है। ज्ञानके अभावका अर्थ है—श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुकी जानकारी मनमें रहे नहीं। उन्हींको जाने और कुछ जानना नहीं। इस प्रकारका जब बन जाता है कोई तब उसमें श्रीकृष्ण अपनी जानकारी—हम कैसे हैं—

'भक्तयामामभिजानति यावान्यश्चास्मि तत्वतः' ये तत्वतः यहाँपर है—ये तत्वतः आगे उस श्लोकमें है 'नान्ये जानन्ति तत्वतः'। गोपियोंके सिवा कोई तत्वसे जानता नहीं। यहाँ भगवान् गीतामें कहते हैं कि मैं जैसा जो कुछ हूँ उसको तत्वसे जानता—पराभक्तिके द्वारा। ये जाना और लीलामें प्रवेश हुआ। 'विशते तदनन्तरम्'। इसका अर्थ है लीलामें प्रवेश, भगवान्‌की मधुर लीलामें प्रवेश। लीलामें जो प्रवेश है ये तबतक नहीं होता जबतक भगवान्‌के मनकी बात हम जानते नहीं पर मनकी बात तबतक नहीं जानते जबतक और सब जानकारीको खो देना नहीं चाहते।

भगवान् ये श्यामसुन्दर रूपी धन तबतक नहीं मिलता जबतक हम सारे घरमें आग नहीं लगा देते। श्यामसुन्दर हमारे पास तबतक बँधकर नहीं रहते जबतक हम मोक्षको भी आग नहीं लगा देते। श्यामसुन्दर तबतक सुखरूपमें हमारे साथ नहीं आते। जबतक लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक, ब्रह्म सुख भी नगण्य और तुच्छ नहीं हो जाता। वहाँतक श्यामसुन्दरका सुख नहीं मिलता। इसकी मनमें तैयारी करें। मनमें तैयारी—भला! ये समर्पण किया नहीं जाता। जहाँ समर्पण किया जाता है वहाँ कुछ रख लिया जाता है। गोपीने

समर्पण किया नहीं—हुआ। और ऐसा हुआ कि वो चाहे कि मैं लौटा लूँ, तो लौटा नहीं सकती। एक बार श्रीराधिकाजीसे किसीने कहा कि देखो! तुम क्यों दुःख सहती हो, भूल जाओ, छोड़ दो। उसने कहा कि भूल जाना चाहती हूँ जब अपनी ओरसे देखूँ तो भूल जाना चाहती हूँ पर वे ऐसे हैं कि वे कभी मनसे अलग जाते नहीं। मैं क्या करूँ? वे मनमें इस प्रकारसे आकरके बैठ गये मेरे जीवनमें कि मुझे पता नहीं लगता कि मेरा मन है कि वे हैं। मन है कि मनकी जगह श्यामसुन्दर हैं। मुझे पता ही नहीं है तो बोलनेपर ये सवाल नहीं आता। इसलिये समर्पण भगवान् वो अपने आप ले लेते हैं। हमारी तैयारी—इसका पता लगता है जब कभी प्रेममार्गपर हम चलते हैं। अपनी जानमें प्रेममार्गपर चलना बड़ा कठिन है और कहींपर हमारे मनकी न हो—मनकी न हो और उस समय हमारा मन अगर विद्रोह करने लगे किसी प्रकारसे तो समझना चाहिये—उनके अनुकूल बननेके लिये हम तैयार नहीं हैं। जब तैयारी होगी तो क्या होगा—विशेषता होगी—उनके मनकी बात हमारे मनमें आने लगेगी। अपने आप आने लगेगी। ये हम यहाँ नहीं कह सकते जिसमें हमारा प्रेम, जिसमें हमारा विशुद्ध अनुराग हो, उसके मनकी बात हमारे मनमें आने लगती है अपने आप और जब यह अनुराग बढ़ जाता है तब वह कह देता है अपने मुँहसे कि भाई, आज हमारा अमुक काम करना है। किसीसे नहीं कहता, किसीसे नहीं कहना चाहता, उस अंतरंग अपने प्रेमीसे कह देता है कि अमुक काम करना है, उसमें कोई लज्जा नहीं, दुविधा नहीं, कोई शंका नहीं, कोई किसी प्रकारका भय नहीं, किसी प्रकारका संकोच नहीं, संभ्रम नहीं, कुछ नहीं।

शरणागतिकी जहाँ स्थिति है उसमें भगवान्‌ने कह दिया प्रेम नहीं—तुम मेरी पूजा करो और मेरे आगे हाथ जोड़ो, मेरे भक्त बन जाओ, मेरे परायण हो जाओ। भला यह बात कहनेकी है

क्या? मेरी पूजा करो—मद्याजी और 'मां नमस्कुरु' मेरे आगे हाथ जोड़ो और मेरे आगे दण्डवत् करो। क्या बात है बताइये? दण्डवत् करवानेसे भला आदमी भागता है कि कोई दण्डवत् न कर ले और वे कहते हैं कि तुम दण्डवत् करो, मुझे प्रणाम करो। जो पूजा करना चाहता है अपनेको वह बड़ा नालायक आदमी है। अपनी पूजाके लिये सारा काम करता है। ये सारा आडम्बर अपनी पूजाके लिये है। अरे! खोटी बात और ये कहते हैं—तुम मेरी पूजा करो। तुम्हें गुप्तसे गुप्त बात कहता हूँ और बड़े महत्वकी 'परमं वच'। ये मामूली वचन नहीं है—'ये परमं वच' बड़े श्रेष्ठ वचन हैं। क्या वचन कहा महाराज? बोले—मेरी पूजा करो और मेरे आगे हाथ जोड़ो और सबसे बड़ी बात एक कह दी जो कोई नहीं कहता पर जिसका अर्थ करते हुए आजतक डरते हैं। सब धर्मोंको छोड़ दो—यह कोई कहनेकी बात है? सब धर्मोंको छोड़ दो। इसका दूसरा अर्थ करनेपर .... हमलोगोंको देखकर आचार्योंने जब देखा कि धर्म तो छोड़े भी नहीं ये और दूसरेके धर्मको अपनायेंगे नहीं और ये जो धर्म है उसके सदाचार उसको छोड़ देंगे। अकेलेमें कहते क्या हैं सब धर्मोंको छोड़ दो और मेरे शरणमें आ जाओ। शरणमें क्या बात है? जहाँ अंतरंगता होती है, विश्वास होता है और जहाँ प्रेम होता है वहाँ तो फिर कहता नहीं, अगर चरणमें उसको गिरवाना हो तो पकड़कर गिरवा लेता है—गिरो, चरण पड़ो, गिरो, चरण पड़ो। हाँ ऐसा।

भगवान्ने गोपिकाओंको बुलाया रासके दिन उनके नाम ले-लेकर। वंशीमें नामका स्वर भरा और जिस-जिसने सुना वे दौड़ी। सब गोपियाँ नहीं आयी थीं। सबको बुलाया भी नहीं था। जो समर्पित हो चुकी थीं इस प्रकारसे उनको बुलाया। उनको बुलाया क्यों? अब बड़ी विचित्र बात है—स्वसुखार्थ बुलाया। कठिन चीज है—स्वसुखार्थ। **'वीक्ष्यरंतुं मनश्चक्रे'**—मनका निर्माण किया। भगवान्ने अपने मनका निर्माण किया। **'वीक्ष्यरंतु मनश्चक्रे'** इच्छा पैदा की मनमें। भगवान्की इच्छा हो गयी। इच्छा हो गयी और योगमायासे कहा कि तुम सब तैयारी करो। योगमायाने जितनी भी उद्यीपनकी सामग्रियाँ थीं—सबका जुगाड़ कर दिया। हरियाली वैसी, चाँदनी भी वैसी ही, पशु-पक्षियोंकी बोली भी वैसी ही, सबकुछ वैसा ही और फिर उनकी परीक्षा की। असलमें परीक्षा नहीं है। ये कभी मौका लगे कोई सुनाये—कोई सुनायेगा(इसका कुछ प्रकाश पू०भाईजीकी श्रीरासपंचाध्यायी पुस्तकमें है)। वहाँ दिव्यभावसे आचार्योंने रासपञ्चाध्यायीकी व्याख्या की है। वहाँ उसको देखनेपर मालूम होता है कि कितना महान भाव था? क्या दिन हुआ वो जगतमें—अभूतपूर्व है और लोगोंके समझमें नहीं आता और आ जाय तो बस उसके आगे कुछ आना नहीं है। जो गोपियोंका आकर्षण है ये आकर्षण श्रीकृष्णने वहीं किया, खीचा उनको। खींचना उनका स्वभाव है इसलिये उनका नाम कृष्ण है। कृष्णका अर्थ है खींचना। खीचनेवाला खींच लेता है। सबको खींच लेता है। जिसकी तरफ आँख दौड़ाई कि उसीको वशमें किया। ये नहीं देखते कि ये मेरे भावदर्शी हैं, ज्ञानी हैं और ये इतने बड़े बूढ़े हैं। ये दण्डकारण्यके ऋषि बिचारे बड़े बड़े, बूढ़े.....आदि उनको खींच लिया। भीष्म जब सामने बैठे थे—ब्रह्मके रूपको नहीं, कुरुक्षेत्रके रूपको, द्वारिकाके रूपको पर ये भी इतना विलक्षण था कि भीष्म सरीखे वृद्ध, बाली, सरीखे वृद्ध, व्यासके समान तत्वज्ञानी महात्मा, ये जब देखते इनकी ओर तो आँख खुली की खुली रह जाती हैं।

श्रीराधामाधवकी प्रेमलीलाकी एक झलक

जगत्में सर्वोच्च भावराज्यमें जिनका नित्य लीला विलास चलता है। वे श्रीराधामाधव एक ही सच्चिदानंदघन वस्तु तत्व हैं। वस्तुत: वहाँ न स्त्री है न पुरुष। एक ही परम तत्व दो रूपोंमें नित्य विभक्त रहकर रसास्वादन रत रहता है। वही अस्वाद्य है, वही आस्वादक है, वही आस्वादन है पर उनका लीला-विलास नित्य निरंतर चलता रहता है और उसमें त्यागकी परम उत्कृष्ट परिस्थिति, परम उत्कृष्ट स्थिति, परम उत्कृष्ट अवस्था रहती है जहाँपर प्रेमका अंकुर उदय होकर अत्यन्त विशाल, महान विशाल वृक्ष बन जाता है और अनादिकालसे लेकर अनन्तकालतक वो जगतमें अपनी सुन्दर सुरभि फैलाता रहता है। उन्हीं राधा-माधवके अनेक लीला चरित्रोंमेंसे कुछ भाव आज यहाँ हमलोग देखते हैं—अनन्त लीलायें हैं लीलाओंकी कहीं कोई सीमा नहीं। अनन्त प्रेमसागरकी अनन्त असीम मधुरतम तरंगे हैं।

उन तरंगोंमेंसे ही कुछ तरंगोका रसास्वादन हमलोग करना चाहते हैं। भगवान् श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधाके प्रेममें अत्यन्त विह्वल—उनसे मिलता चाहते हैं। ये मिलनकी उत्कण्ठा, मिलनका मनोरथ ये परस्पर एक दूसरेको रसदानके लिये ही हुआ करता है। बड़ा सुन्दर। श्यामसुन्दर एक दिन विह्वल हो गये राधाको प्राप्त करनेके लिये। राधा उस समय कहीं विलक्षण भावापन्न एकान्त निकुञ्जमें थी और मानिनी सी हुई थी। श्रीश्यामसुन्दरकी उत्कण्ठा देखनेके लिये, श्रीश्यामसुन्दरके रसका विशेष प्राकट्य हो इसलिये ये आ नहीं रही थी। उन्होंने ही एक दूतीका वेश बनाया। एक दूती बनी और वो दूती पहुँची श्यामसुन्दरके पास। श्यामसुन्दरसे जाकर दूतीने कहा तुम श्रीराधाको यदि चाहते हो तो राधाके आगे अनुनय विनय

करना होगा। मै राधाको जाकर, कहो तो तुम्हारी ओरसे समझाऊँ और वो यदि आ जाय तो तुम्हारे साथ उसका मिलन हो सकता है। श्रीकृष्ण तो आतुर थे। उन्होंने ज्यों दूतीको देखा, कहा—दूती तम्हारा बड़ा उपकार मेरे ऊपर तुम अभी जाओ। मेरी जो स्थिति है, दशा है उसका वाणीसे तो वर्णन हो नहीं सकता पर मैं बहुत ऊपर-ऊपरकी थोड़ी-सी बात करता हूँ—उन्हें जाकर तुम श्रीमतीजीके चरणोंमें निवेदन कर देना और कहना श्यामसुन्दर तुम्हारे लिये अत्यन्त विरह-कातर हैं यद्यपि वे अपनेको तुम्हारे योग्य नहीं समझते, तुम जिस प्रकार की रूप गुणशीला सर्वगुणसम्पन्ना हो तम्हारे सामने श्रीकृष्ण कुछ भी प्रभाव नहीं रखते। किसी प्रकारकी भी उनकी योग्यता नहीं परन्तु तुम कृपा करो—वे तुम्हारे लिये अत्यन्त रस लालायित हैं और उनको तुम मेरी ओरसे यह सुनाना—

तुम कुछ भी कहो भले कह कर सुख पावो।
डाँटो दुतकारो पर निकुञ्जमें आओ।
अब देखे बिना न मैं पलभर रह पाता।
तुमसे क्या कहूँ न कुछ भी मुझे सुहाता॥
मुरली, लकुटि प्रिय सखा वत्स गौमाता।
है नहीं किसीसे मेरा मन हरषाता॥
मैया का मिश्री माखन मुझे न भाता।
मन अधर सुधा-रस-पान हेतु बिलखाता॥
क्या भेजूँ तुम्हें संदेश, न मैं लख पाता।
तुम मिलो तुरत, बस एक यही मन आता॥
है प्रेम नहीं मुझको, जो मन सरसाता।
हम मधुप युगल तव मुख पंकज मडराता॥
तुम हो प्राणोंकी प्राण न अब तरसाओ।
मैं पैरों पड़ता मुझे न यों छिटकाओ॥

(पद रत्नाकर ३९७)

तुम जाके कहना दूती, श्रीराधे! तुम कुछ भी कहो वो मुझे स्वीकार। तुम्हें सुख मिले इस बातके लिये तुम्हारी डाँट फटकार ये सब प्रसन्नताका हेतु होगी मुझको। तुम डाँटो, दुत्कारो जो कछ भी मनमें आवे सो कहो पर निकुञ्जमें आ जावो। अब तुम्हें देखे बिना एक पल भी मैं नहीं रह पाता। मैं तुमसे क्या कहूँ कोई भी चीज मुझे सुहाती नहीं। ये मुरली मुझे बड़ी प्यारी, ये लकुटी, ये मेरे प्रिय सखा, ये प्यारे बछड़े और ये मेरी गौ माताएँ ये सब मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। परन्तु इनमेंसे अब कोई भी मेरे मनमें हर्ष पैदा नहीं कर सकता। इन किसीको देखकर मेरा मन नहीं हरषाता और तो क्या मैयाकी अत्यन्त स्नेहमयी सुधासे भरा हुआ मिश्री माखन भी मझे भाता नहीं। मेरा मन तो केवल है श्रीराधिके तुम्हारे अधर सुधा रसका पान करनेके लिये ही बिलख रहा है। मैं तुम्हें क्या संदेश भेजूँ? मेरी समझमें नहीं आता, बस एक यही मनमें आ रहा है कि तुम तुरन्त मिलो। बस तुम तुरन्त मिलो। मेरे अन्दर प्रेम नहीं जो मेरे मनको सरस बना सके और जो तुम्हारे हृदयमें भी रस भर सके। परन्तु मेरा जो ये नेत्र युगल मधुकर है—ये निरंतर तेरे मुख पंकजपर मडँरा रहा है। तेरे मुख रूपी कमलपर, तुम्हारे मुखरूपी पंकजपर मेरा नेत्र युगल मधुकर मँडरा रहा है। अब बस हे प्रिये! तुम मेरे प्राणोंकी प्राण हो अब मुझे तरसाओ नहीं। मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। मुझे इस प्रकार छिटकाओ मत।

प्राणेश्वरि! विनती सुनो मुझे अपनाओ।
दर्शन दे मुझको प्राण दान दो, आओ॥
आना न रुचे तो मुझको ही बुलवाओ।
दे अनुमति, मुझपर प्रिये! दया दिखलाओ।
तुम अब भी यदि मुझपर न दया लाओगी।
तो मुझे प्राण संकटमें तुम पाओगी॥

हे प्रिये! हे प्राणेश्वरि! तुम मेरी विनय सुनो। मुझे अपना लो। मुझे अपने दर्शन देकर प्राणदान दो। शीघ्र आओ और प्रिये यदि तुम्हें आना न रुचे, तुम आना न चाहो तो मुझे ही बुलवा लो।

निषेध न करो मेरे आनेका, मुझे आनेसे रोको मत, आज्ञा दो। हे प्रिये! मुझपर दया दिखलाओ और याद रखो प्रिये! यदि अब भी तुम मुझपर दया न करोगी। अब भी तुम मुझसे न मिलोगी तो याद रखना—मेरे प्राणोंको तुम संकटमें पाओगी। दूती! तुम इस प्रकार जाकरके मेरे संदेशका सार श्रीवृषभानुनन्दिनीजीको सुना देना।

दूती वहाँसे चली और मन ही मन प्रसन्न होती हुई आ पहुँची श्रीवृषभानुनन्दिनीजीके पास, जिस एकान्तमें निभृत-निकुञ्जमें मानिनीके रूपमें श्रीकृष्णका स्मरण करती हुई उनके प्रति निमौत्सुका हुई जो केवल मानका रस आस्वादन कर रही थी। रसास्वादन करनेके लिये ही जिसने इस प्रकारका वेश बनाया था। उनके पास दूती आ पहुँची। दूतीने आकर सारा संदेश सुनाया। बस सुनते ही श्रीराधिकाजी रो पड़ीं और उनका शरीर मूर्छित होकर गिर पड़ा।

दूतीने आ जब यह संदेश सुनाया।
राई रो पड़ी, पड़ी हो मूर्छित काया॥
दौड़ी सखियाँ, कर यत्न चेत करवाया।
बोली मैं कितनी हूँ निर्दयी अमाया॥
मैं प्राणनाथ को हूँ कितना दुःख देती।
उनसे केवल मैं निज सुख को ही लेती॥

दूतीका संदेश सुनकर श्रीराधिकाजी रो पड़ीं। उनका शरीर मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। अचेत हो गयीं। आसपास खड़ी सखियाँ दौंड़ी। यत्न करके राईको, श्रीराधिकाजीको चेत करवाया। चेत होते ही उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वह बड़ी उदास होकर, विषादग्रस्त होकर बोली—निरंतर मैं कितना प्राणनाथको दुःख देती रहती हूँ। मुझे धिक्कार है। मैं केवल उनके द्वारा अपना सुख ही लेती रहती हूँ। उनको कभी सुख देनेका प्रयत्न नहीं करती। ऐसा कहकर—

हो आतुर अति दूतीको ले संग आयी।
देखी प्रियतम की बुरी दशा अकुलायी॥

बड़ी आर्त्त होकर श्रीराधिकाजी दूतीके साथ वहाँ आयीं जहाँ बड़ी विकल दशामें हा राधा! हा राधिके! हा प्राणेश्वरि! हा हृदयेश्वरि! शीघ्र दर्शन दो ऐसा पुकारते हुए श्रीश्यामसुन्दर बड़ी बुरी दशामें वे लोटपोट हो रहे थे, धरतीपर लोट रहे थे। अत्यन्त आर्त्त होकर, आतुर होकर इस बुरी दशाको देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गयीं, अकुला गयीं।

निज पट से पौंछे नेत्र मधुर मृदु हँसकर।
फिर प्राणनाथ से मिली बाहुमें कसकर॥
सब मिटी व्यथा मुखपर मुस्काहट छायी।
कर अधर सुधा-रस-पान गले लपटायी॥
सब हुए प्रफुल्लित अंग, बही रस-धारा।
सुख अन्तहीनने सारे दुःखको मारा॥

श्रीराधिकाजीने आँसू बहाते हुए श्रीकृष्णके प्राण प्रियतमके नेत्रोंको अपने नीलपटसे पोंछा और बड़ा मधुर मृदु हँसकर प्राणनाथका निहोरा करने लगी। फिर उन्हें भुजाओंमें कसकर प्राणनाथसे मिली। उनकी सारी व्यथा तुरन्त दूर हो गयी। उनके मुखपर मुस्कुराहट आ गयी और अधर सुधा-रसका पान करके उन्होंने श्रीराधिकाजीको अपने गलेसे लगा लिया। बस सारे अंग जो मुरझा रहे थे, अलसा रहे थे, वे समस्त श्रीश्यामसुन्दरके अंग प्रफुल्लित हो गये। रसकी धारा बह चली। अन्तहीन, निरंतर रहनेवाले अनन्त सुखने सारे दुःखोंको—जो व्याकुलताका दुःख था, विरहका दुःख था, वियोगकी पीड़ा थी, विप्रलम्भका बड़ा भारी क्लेश था उस सबको मार दिया। परम सुख रूप केलि होने लगी। इस प्रकार राधा-माधव निरंतर विहार चलता रहता है। निरंतर उनकी रस-माधुरीका अनन्त-अनन्त सागर लहराता रहता है। वे कभी वियोग और कभी संयोग, कभी विप्रलम्भ और कभी मिलनका रसास्वादन करते हैं। इसका कोई कारण नहीं, कोई हेतु नहीं। हेतु केवल उनकी लीला और प्रकारान्तरसे

बाह्यजगतके जीवोंको त्यागका परम आदर्श सिखाकर, गन्दे कामोपभोगकी भूमिकासे उठाकर परम त्यागमय दिव्य भगवत्ताकी सत्तामें, भगवान्‌की दिव्य माधुरीमें ले जाकर उन्हें प्रेमका रसास्वादन कराना।

एक दिनकी बात, श्रीराधिकाजी सो रही थीं। अपने निकुञ्जके शयनकक्षमें सो रही थी। श्यामसुन्दर पास थे। असलमें बात यह है कि ये एक ही दो बने हुए हैं। दो बनकर एक ही लीला चल रही है। इनमें आपसमें कभी विछोह, वियोग होता नहीं, पर वियोगकी एक लीला होती है, वियोगकी सम्भावना होती है वियोगकी अनुभूति होती है। वियोगमें भी विप्रलम्भमें भी दोनोंका मिलन रहता है। कभी श्यामसुन्दर वियोगका अनुभव करते हैं और कभी श्रीराधाजी वियोगका अनुभव करती हैं। एक दिन वे अपने शयनकक्षमें, निकुञ्जमें सोयी हुई थी। उस समय उनको ये बात विस्मृत हो गयी कि श्यामसुन्दर यहींपर मेरे समीप, मेरे साथ ही शयन कर रहे हैं। उन्होंने पीछे जब इस बातको समझा और जाना तब सोचा कि ओहो! मैं कितनी भूलमें थी, श्यामसुन्दर यहीं थे, मैं उनको नहीं अपने पास मान रही थी। सपना-सा देख रही थी। उस समय उनकी क्या अवस्था होती है? इसका वे वर्णन अपने आप अपनी भाषामें करती हैं।

सो रही थी मैं अकेली कक्षमें।
लगा कोई रहा चिपटा वक्षमें॥
अति सुकोमल सरस उसका स्पर्श है।
उठ रहा उरमें अनोखा हर्ष है॥
विविध क्रीड़ा रसमयी करने लगा।
मोद देता मोदमें भरने लगा॥
मिटा सब व्यवधान अन्तर मर गया।
हुआ सब विस्मृत मधुर रस भर गया॥

अपना अनुभव वो कहती हैं कि मैं अकेली अपने कक्षमें सो

रही थी। कमरेमें शयनागारमें मुझे लगा, मुझे ऐसा वहम हुआ कि कोई मेरे वक्षस्थलसे, मेरे हृदयसे लगा हुआ सो रहा है। 'अति सुकोमल सरस उसका स्पर्श है।' उसका स्पर्श अत्यन्त कोमल है और रसपूर्ण है और उसके स्पर्शसे मेरे हृदयमें अनोखा हर्ष लहरा रहा है। इतनेमें ही मैंने क्या देखा, क्या अनुभव किया कि

विविध क्रीड़ा रसमयी करने लगा।
मोद देता मोदमें भरने लगा॥

जो मेरे वक्षस्थलसे चिपटा हुआ था, वो विविध भाँतिकी रसमयी क्रीडा करने लगा। रसमय खेल करने लगा। मुझे बड़ा आनन्द आया। मुझे मोद देने लगा और स्वयं वो मोदमें भरने लगा। इस प्रकारकी ऐसी क्रीडा हुई कि सारा व्यवधान मिट गया और जो अन्तर था, भेद था वो मानो मर ही गया। सब कुछ विस्मृत हो गया और सारा का सारा उस समयका जीवन केवल मधुर रसके द्वारा परिपूर्ण हो गया।

अंग सारे मिले उसके अंगमें।
इन्द्रियाँ सब मिली इन्द्रिय संगमें॥
मन अमन हो रूप रसका बन गया।
प्रेमकी निर्मल सुधासे सन गया॥

सारे अंग उसके अंगके साथ एक हो गये। इन्द्रियोंका एक साथ मिलन हो गया। मन अमन होकर के केवल रूपमय बन गया, मानो मनमें और कुछ है ही नहीं, उसमें प्रेमका अमृत ही भरा हुआ है निर्मल, इसके सिवा मनमें कुछ नहीं रहा, कुछ देरके बाद—

चेत आया वृत्ति जब बाहर हुई।
लगी मैं ये सोचने विस्मित हुई॥

कुछ देर बाद मानों होश आया, चेत आया, मेरी वृत्ति वहाँसे बाहर निकली। तब बुद्धि सोचने लगी, मैं सोचने लगी, बड़ा विस्मय हुआ कि ये क्या देखा मैंने? क्या ये स्वप्न था? क्या ये मैं सपना

देख रही थी? मेरे पास तो कोई था नहीं। फिर सोचने लगी—

स्वप्न था तो स्वप्न यह टूटा न क्यों?
मिलन दोनोंका अभी छूटा न क्यों?

यदि सपना था तो जागनेपर स्वप्नकी वस्तु नहीं रहनी चाहिये। परंतु मैं तो देख रही हूँ कि हम दोनोंका अब भी मिलन हो रहा है। हमदोनों अभी लिपटे हुए हैं। हम दोनोंका मिलन नहीं हुआ। ये हमारा मिलन छूटा क्यों नहीं?

क्यों जकड़ रक्खा मुझे उसने अभी?
हो रही क्यों चेतना प्रमुदित सभी?

अबतक उसने मुझको क्यों जकड़ रक्खा है? और मेरी चेतना, मेरी अन्त:चेतना अभीतक आनन्दमें क्यों भर रही है? समस्त चेतनाओंमें आनन्दमयता छा रही है। ये क्यों? क्या तो ये स्वप्न नहीं—

स्वप्न कल्पित है नहीं प्रत्यक्ष है।
लगे मेरे प्राणप्रियतम वक्ष हैं।

मेरा भ्रम था जो मैं सत्य समझ रही थी। मेरी भूल थी जो मैं सपना समझ रही थी। ये स्वप्न नहीं, ये स्वप्नकी कल्पना नहीं। ये प्रत्यक्ष सत्य है। सचमुच मेरे प्राणप्रियतम मेरे वक्षस्थलसे चिपटे हुए हैं।

मानती थी मैं यहाँ वे हैं नहीं।
भूल थी मेरी सरासर यह सही॥

मैं मान रही थी कि प्रियतम यहाँ नहीं हैं। मैं समझ रही थी कि वे मुझसे दूर हैं। मैं अकेली यहाँपर हूँ। पर यह मेरी सरासर भूल थी। सचमुच भूल थी।

प्राणप्रिय रहते सदा मेरे यहीं।
छोड़कर मुझको न जाते क्षण कहीं॥

मेरे प्राणप्रिय, मेरे प्राणप्रियतम, मेरे परम प्रेमास्पद ये श्रीश्यामसुन्दर सदा यहीं रहते हैं। मुझको छोड़कर क्षणभरके लिये भी कहीं जाते नहीं। मैं बड़ी भूलमें थी कि मैंने उनको दूर माना, मैंने उनका

विछोह माना और साथ रहते हुए वक्षस्थलमें चिपटे हुए उनको मैंने भ्रम समझा, मैंने सपना समझा।

आज प्रियतमने यह मुझे दिखला दिया।
नित्य का भ्रम पूर्ण आज मिटा दिया॥

आज उन प्रियतमने मुझे साफ-साफ प्रत्यक्ष दिखला दिया कि मैं तुम्हारे पास हूँ, मैं जो नित्य-नित्य भ्रममें पड़ा करती थी, कहाँ चले गये प्रियतम? कहाँ चले गये? अकेली हूँ मैं? वे मेरे पास हैं नहीं, वे हैं नहीं इस नित्यके भ्रमको, इस सदाके वहमको उन्होंने आज पूर्ण रूपसे मिटा दिया।

भुजाभर मैंने गले लिपटा लिया।
नित्य पाये हुए प्रिय को पा लिया॥

मैंने भुजाभरके उनको अपने गलेसे लिपटा लिया। वो नित्य मुझे प्राप्त थे उन प्रियतमको मैंने पा लिया। भूलसे अप्राप्त मानती थी। भूलसे दूर मानती थी। भूलसे विछोह मानती थी। आज मैंने उन प्रियतमकी कृपासे वो नित्य प्राप्त को जो अप्रत्यक्ष मानती थी उन प्रियको मैंने प्राप्त कर लिया। वे प्रिय मेरे प्रत्यक्ष हो गये। थे मेरे पास, थे मुझसे लिपटे हुए। थे मेरे साथ। पर मैं भ्रमसे उन्हें भिन्न मान रही थी। पृथक् मान रही थी। अलग मान रही थी, दूर मान रही थी। आज मैंने उन नित्य प्राप्त मेरे प्रेमास्पद परम श्रेष्ठ श्यामसुन्दरको पा लिया। नित्य पाये हुए प्रियको पा लिया।

एक थे नित भूल से पर भेद था।
इसीसे चिरकाल से अति खेद था॥

एक थे। सदा एक थे। केवल भ्रमसे, केवल भूलसे भेद बना हुआ था, भेद मान रहे थे। इसीलिये न मालूम किस कालसे अनादिकालसे अत्यन्त खेद छा रहा था। बहुत देर हो गयी। बड़ा विलम्ब हो गया। चित्त खिन्न था उन्हें दूर मानकर। पर आज—

कर कृपा प्रियने उसे अब हर लिया।
मिल मिलाकर एक रस अब कर लिया॥

अब उन प्रियतमने कृपा करके मेरे उस वहमको, मेरे उस भ्रमको सर्वथा हरण कर लिया। वह स्वयं मिलकर और मुझे मिलाकर अब एक रस कर लिया। एकरस पहले ही थे। हमारा विछोह ये भ्रमका था अथवा लीला रसास्वादनकी विशेष प्रगाढ़ताके लिये प्रियतमकी लीला थी। प्रगाढ़ लीला रसका प्राकट्य हो गया। लीलारसमें निमग्न हो गये। दोनों एक थे, पास थे। दूर मान रहे थे। एक हो गये। पास हो गये और मिलकर एक रस हो गये। इस प्रकार रसकी नित्य अनुभूति उनको होती। असलमें भगवान् हमसे दूर नहीं। प्रेमास्पदसे प्रेमी दूर नहीं और प्रेमीसे प्रेमास्पद दूर नहीं। परन्तु हमने अपने भ्रमसे, अपनी भूलसे उन्हें दूर मान रखा है।

वे नित्य हमारे पास, हमको अपने हृदयसे लगाये हुए हमारे साथ प्रेम कर रहे हैं। हमारा आलिंगन कर रहे हैं। हमें अपना मानकर, अपना बनाकर रसास्वादन कर करा रहे हैं और हम भाग्यहीन ये मानते नहीं।

राधा भाग्यहीन नहीं, वहाँ तो ये न मानना भी ये रसका प्रगाढ़ आस्वादन करनेके लिये और मानना भी ....। कभी कभी ये पास होनेपर भी दूर दिखायी देते हैं और दिखायी देनेपर भी प्रेम वैचित्यमें अपना रूप बदल जाता है। राधा माधव हो जाते हैं, माधव राधा हो जाते हैं।

एक बारकी बात—श्रीराधाजी भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके वियोगकी कल्पनामें विलाप कर रही थीं। वियोग था नहीं। समीप थे, पास थे परन्तु वियोगकी कल्पना हो गयी। उन्हें लगा श्यामसुन्दर मेरे पास नहीं बड़े दूर हैं और इस दूरीके ख्यालसे वे करुण विलाप करने लगीं। हा प्राणप्रेष्ठ! हा प्रियतम! हा रमण! हे श्यामसुन्दर! तुम कहाँ चले गये? जल्दी मिलो। इतनेमें ही भाव बदला—श्यामसुन्दर वहाँ थे ही, दिखायी दिये। उनके साथ लीला विलास चलने लगा। परन्तु फिर तुरन्त ही प्रेम वैचित्यकी स्थिति प्राप्त हो गयी। तुरन्त

अपनेको भूल गयीं और उनको निश्चय हो गया कि मैं राधाके प्राणवल्लभ श्रीश्यामसुन्दर हूँ। राधा मेरी प्राणवल्लभा हैं और मैं उनके प्राणवल्लभ श्रीश्यामसुन्दर हूँ। उद्धवजीसे राधाने ये कहा था कि श्यामसुन्दर सदा मेरे साथ रहते हैं। बस इसी भावसे वो विचारने लगीं और सोचने लगीं कि मैं श्यामसुन्दर हूँ। सचमुच उद्धवने ठीक कहा था मैं निरंतर श्रीराधाके साथ रहता हूँ। मैं कभी उनसे पृथक् होता ही नहीं। चलूँ राधाके पास और इस उद्धवके कथनको सत्य प्रमाणित कर दूँ। अपनी सच्ची अनुभूतिके वर्णन द्वारा उसे बता दूँ कि तुम जो अनुभव करती हो वह तुम्हारी भावना नहीं, कल्पना नहीं, परम सत्य है। मैं नित्य तुम्हारे साथ रहता हूँ और वे श्यामसुन्दर भावसे ही अपनेको श्यामसुन्दर मानती हुई, श्रीराधाजी अपनेको श्यामसुन्दर मानती हुई श्रीश्यामसुन्दरके पास पहुँचीं और उन्हें राधा मानकर हृदयसे लगाकर कहने लगीं। बड़ा विचित्र भाव, केवल भाव नहीं पलटा, दोनोंके अंग पलट गये। दोनोंके वर्ण पलट गये, दोनोंके वस्त्राभूषण पलट गये। ये प्रेम वैचित्यकी प्रगाढ़ अवस्थामें इस प्रकार हुआ करता है और वो राधे, वो राधाजी श्यामसुन्दरके रूपमें, श्यामसुन्दरको राधा समझकर कहने लगीं

राधे! तुम जो अनुभव करती लीलारत रहती हो नित्य।
सो कल्पना नहीं है किंचित् परम तथ्य है अतिशय सत्य।

(पद रत्नाकर /३२८)

हे राधे! तुम जो अनुभव करती हो कि श्यामसुन्दर निरंतर मेरे पास रहते हैं और साथ रहते हैं और इस अनुभवसे तुम निरंतर श्रीश्यामसुन्दरके साथ साथ मेरे साथ लीला विहारमें निरत रहती हो, ये तुम्हारी कल्पना नहीं हैं। ये जरा भी बनावटी बात नहीं है। ये परम तथ्य है। अतिशय सत्य है। मैं निरंतर तुम्हारे साथ रहता हूँ और तुम मुझसे लीलाविहार किया करती हो।

लोग देखते हैं केवल मथुरामें मेरा नित्य निवास।
किन्तु तुम्हारा प्रियतम मैं रहता हूँ सदा तुम्हारे पास॥

लोग भ्रमसे देखते हैं, लोगोंको भ्रमसे इस प्रकारका भान होता है कि मेरा नित्य निवास मथुरामें हो गया। मैं मथुरामें जाकर रहने लगा और ये भ्रम क्या है? वास्तवमें उनके लिये ये सत्य है क्योंकि उनका प्रियतम मैं नहीं तो मथुरामें रहनेवाले वसुदेव नन्दनको जानते हैं और वे अवश्य मथुरामें रहते ही हैं। परन्तु राधिके! मैं जो तुम्हारा प्रियतम हूँ, तुम्हारा प्रेष्ठ हूँ, मेरे सिवा तुम्हारे लिये कोई भी प्रिय नहीं, कोई भी प्रियतर नहीं, कोई भी प्रियतम नहीं। मैं तुम्हारा प्यारा, तुम्हारा अपना सदा तुम्हारे पास रहता हूँ। तुमसे कभी अलग होता ही नहीं।

किसी परिस्थिति, किसी स्थान में होता नहीं कदापि वियोग।
खान पान, व्यवहार, शयनमें रहता सदा नित्य संयोग॥

(पद-रत्नाकर / ३२८)

जीवनमें इस प्रकारकी परिस्थितियाँ होती हैं, इस प्रकारके स्थान होते हैं जहाँ अत्यन्त प्रियसे प्रियतमका भी वियोग रखना आवश्यक होता है। सब स्थितियोंमें किसीको हम अपने साथ नहीं रख सकते। अत्यन्त प्रिय अपनी धर्मपत्नी और अत्यन्त प्रियतम अपने स्वामी उनके सामने भी बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो नहीं प्रगट की जाती हैं और न ही उनके सामने वो काम किये जाते। कोई घृणित काम है, कोई बड़े गुप्त काम हैं, कोई बड़े महत्वके काम हैं। किन्हीं ऐसे कामोंमें जहाँ लज्जा रखना आवश्यक होता है, किन्हीं ऐसे कामोंमें जहाँ पवित्रताकी रक्षाके लिये वो अशुचि अवस्थामें किसीको पासमें नहीं आने दिया जाता, कहीं ऐसी स्थिति होती है जहाँ देखनेवालेको घृणा हो सकती है, उस अवस्थामें कोई पास नहीं रखा जाता। इस प्रकारसे प्रत्येक व्यवहारमें, प्रत्येक स्थानमें, प्रत्येक परिस्थितिमें सबका साथ रखना कठिन, किसीको साथ नहीं

रखा जाता। परन्तु हे राधिके! मेरा साथ नित्य रहता है। खाने पीनेमें प्रत्येक प्रकारके गुप्त और प्रगट, घृणित और पवित्र, कुत्सित और अत्यन्त उत्तम व्यवहारोंमें, सोनेमें, जागनेमें, बाहर-भीतर सर्वथा मेरा नित्य संयोग तुम्हारे साथ रहता है। ऐसी परिस्थिति है कि न वहाँ घृणा है, न लज्जा है, न संकोच है, न छिपाव है। ये सब जगह रहते हैं। दुराव रहता है प्रियसे, प्रियतमके साथ भी रहता है। पर राधिके! तुम्हारे पास मैं जो रहता हूँ उसमें न कहीं घृणा बाधा डाल सकती है, न लज्जा बाधा डाल सकती है, न कोई संकोच है, न कोई दुराव है। क्यों नहीं—

एकरूपता में कैसे कब रह सकता है भेद-छिपाव।
नहीं घृणा लज्जा है कोई नहीं कहीं संकोच दुराव॥

न घृणा है, न लज्जा है, न संकोच है, न छिपाव है। एकरूपतामें क्या कोई ऐसा है जो अपने आपसे छिपाकर कोई काम कर सकता है? अपने आपमें एकरूपता है। इसी प्रकार हे राधा! मेरी तुम्हारे साथ एकरूपता—तुम मेरी आत्मा और मैं तुम्हारी आत्मा, तुम निरंतर मेरे अन्दरमें, मैं निरंतर तुम्हारे अन्दर।

आनन्दकी आह्लादिनी श्यामा, आह्लादिनीके आनन्द श्याम।
सदा-सर्वदा जुगल एक मन एक जुगल तन विलसत धाम॥

एक ही दो रुपोंमें हैं। कभी दो हुए नहीं, दो होंगे नहीं, दो हैं नहीं। अतएव एकरूपतामें, एकता में, कब, कैसी लज्जा, कहाँ, कब, कैसा संकोच, कहाँ, कब कैसा भेद, कैसा छिपाव —ये रह नहीं सकता। इसलिये—

नहीं एक पल भी हटता मैं, नहीं छोड़ता मधुमय संग।
अनुपम मधुर ललित लीला का बढ़ता नित नवीन रस रंग॥

(पद-रत्नाकर / ३२८)

तुम्हारे संगमें मुझे बड़ी मधुरता प्राप्त होती है। तुम्हारा संग माधुर्यमय है। मुझे बड़ा मीठा लगता है। तुम चाहो छोड़ दो, तब भी मैं नहीं छोड़ सकता, एक पलभरके लिये भी मैं तुमको छोड़कर, तुम्हारे मधुमय संगको छोड़कर, तुम्हारी माधुरी पूर्ण संगताको छोड़कर मैं कभी अलग नहीं रह सकता और इसलिये तुम्हारी मेरी ललित लीलाका, बड़ी सुन्दर मनोहारिणी लीलाका जो अनुपम है, जिसकी कहीं पर तुलना नहीं, उपमा नहीं, जो परम मधुर है—उस लीलाका नित्य नया रस-रंग उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। रसलीलामें कभी विराम तो होता ही नहीं। कभी रसमें फीकास भी नहीं आता। कभी रसमें एकरसता नहीं रहती बल्कि वो रस नित्य नये रूपमें बढ़ता रहता है।

अनुपम मधुर ललित लीलाका बढ़ता नित नवीन रस-रंग।

अनुपम मधुर ललित लीलाका वो रस रंग नित नवीन रूपमें बढ़ता रहता है।

सदा एक मन सदा एक तन सदा एक रस एकाकार।
सदा बने दो सदा बहाते पावन प्रीति-सुधा-रस-धार॥

स्वरूपतः हम सदा एक शरीर हैं। स्वरूपतः हम सदा एक मन हैं। स्वरूपतः हम सदा एक रस हैं। वास्तवमें एकाकार हैं। परन्तु वास्तवमें ही सदा दो बने हुए हैं और सदा ही ये पावन प्रेम सुधा रसकी धारा हम बहाते रहते हैं। पावन माने पवित्र करने वाली और पवित्र हमारी ये प्रीति रस सुधा-धारा, हमारी ये प्रेमरसामृतकी धारा, ये प्रेम रसामृतका प्रवाह, अखिल जगतको पवित्र करनेवाला ये निरंतर हम एक ही दो बने हुए जो लीला होती है, उसमें निरंतर बहता रहता है।

नहीं कभी होता बिछोह है, होता नहीं कभी अलगाव।
बढ़ता नित्य मधुर रस उज्ज्वल बढ़ता नया नया नित-चाव॥

कभी हमलोगोंका बिछोह नहीं होता, कभी अलगाव नहीं होता। नित्य निरंतर ये मधुर उज्ज्वल रस बढ़ता रहता है और जितना जितना रस बढ़ता है, जितनी जितनी रसानुभूति होती है, जितनी

जितनी रसमयता प्राप्त होती है उतना उतना ही रसास्वादनका नित्य नया चाव बढ़ता रहता है। ये संसारका विलास नहीं, ये संसारका भोग नहीं, ये इन्द्रियोंका परिचालन नहीं जहाँ थकावट होती है, जहाँ विश्रामकी आवश्यकता होती है। ये स्वयं विश्राम रूप, ये स्वयं सुखमय परम निर्मल आनन्दमय है।

होती नहीं क्लान्ति मिलती विश्रान्ति परम सुखमय निर्मल।
रहती सदा अशान्ति शान्त अति रस आस्वादिनि अविचल चल॥

बड़ी सुन्दर बात इसमें कहीं क्लान्ति नहीं होती। इस रसपानमें कभी तृप्ति नहीं होती, कभी मन भरता नहीं, कभी थकावट नहीं मालूम होती बल्कि विश्राम बढ़ता है, शान्ति बढ़ती है। नयी ताकत बढ़ती है और निर्मल ये सुखमय है। यहाँ इस क्षेत्रमें, इस लीला विलासके क्षेत्रमें, इस रासमण्डलमें, इस तुम्हारे और मेरे प्रीति रसास्वादनमें अशान्ति अत्यन्त शान्त हो जाती है और वो अशान्ति रस-आस्वादिनी होकर वो चंचल अशान्ति रसास्वादिनी होकर अविचल शान्ति बन जाती है। अथवा शान्ति ही, वो ब्रह्मकी शान्ति ही यहाँ रसास्वादिनी चंचल अशान्ति बन जाती है। जो शान्ति नित्यचल है, वही शान्ति इस प्रेम रस सागरमें तरंग बनकर रसका आस्वादन करने वाली आत्यन्तिक चंचल अशान्ति बन जाती है। ये अशान्ति उस परम शान्तिका परिणाम है, ये अशान्ति उस परम शान्तिका फल है, ये अशान्ति ब्रह्मके परमाधार सच्चिदानन्दमय रस सागर मेरी मिलन प्रीतिका मेरे मिलन-सुखका अनुभव है अतएव इसमें —

नित्य नयी क्षमता है बढ़ती, नित्य नया उल्लास अथाह।
नित्य नयी आकांक्षा अविरल, बढ़ता नित्य नया उत्साह॥

जगत्‌के भोगोंमें क्षमताका नाश होता है, उल्लास घट जाता है। भोगोपरान्त आकांक्षा मिट जाती है और उत्साह घट जाता है। पर इस रसास्वादनमें इस रासलीलामें, इस तुम्हारे और मेरे लीला विहारमें नित्य नयी क्षमताका उदय होता है। नित्य नये अथाह

उल्लासका प्राकट्य होता है। नित्य नयी आकांक्षायें अविरल रूपसे बढ़ती रहती हैं और नित्य नवीन उत्साहका प्राकट्य और संवर्द्धन होता रहता है। नयी क्षमता, नया उल्लास, नयी आकांक्षा, नया उत्साह, नया रसास्वादनकी इच्छा, नया रसास्वादन, नवनील नित्य नवीन रूपवाले श्रीश्यामसुन्दर मैं और नित्य नवीन रूपवाली नित सौन्दर्यमाधुर्यवर्धन शालिनी तुम राधा। तुम्हारा सौन्दर्य माधुर्य निरंतर बढ़ता रहता है। विषय और आधार दोनों नित्य नवीन नित्य नये रूपमें उल्लसित होते रहते हैं।

दोनों दोनोंके प्रिय प्रियतम, दोनों दोनोंके शृंगार।
दोनों दोनोंके शुचि आत्मा, दोनों दोनोंके आधार॥

हमारा क्या रूप है? हम दोनों ही एक दूसरेके प्रेमी हैं। हमदोनों ही एक दूसरेके आत्मा हैं, हम दोनों ही एक दूसरेके प्राणाराम प्रियतम हैं। हमदोनों ही एक दूसरेके शृंगार हैं। तुम्हारा प्रेमी मैं और मेरी प्रेमिका तुम। तुम्हारा एकमात्र प्रियतम मैं और मेरी प्रियतम तुम। मेरा शृंगार तुम और तुम्हारा शृंगार मैं, मेरी आत्मा तुम और तुम्हारी आत्मा मैं—यों दोनों दोनोंके आधार—हमदोनों ही एक दूसरेके आधार हैं। मेरा अधार तुम और तुम्हारा आधार मैं। आधार आधेयका कोई भेद नहीं परस्पर दोनों आधार। आत्मा ध्येयका कोई भेद नहीं। परस्पर दोनों आत्मा। प्रिया-प्रियतमका कोई भेद नहीं, दोनों ही प्रेमी और प्रियतम। परस्परके शोभा शृंगारका भेद नहीं। दोनों ही दोनोंकी शोभा, दोनों ही दोनोंके शृंगार—इस प्रकार—

दोनों दोनोंके नित संगी, दोनों दोनों के हिय हार।
दोनों दोनोंमें मिल भूले, भुक्ति मुक्ति अग जग संसार॥

दोनों दोनोंके नित संगी—हम दोनों ही दोनोंके नित्य संगी हैं। दोनों ही दोनोंमें नित्य आसक्त हैं। दोनों ही दोनोंके नित्य साथी हैं। दोके सिवा कोई तीसरा नहीं और दोनों ही दोनोंके हृदयके

हार हैं। तुम मेरे हृदयका हार और मैं तुम्हारे हृदयका हार। मैं तुम्हारे कंठसे कभी अलग नहीं हुई। तुम मेरे कंठसे कभी अलग नहीं होती। तुम मेरे हृदयका हार बनी हुई शोभा पा रही और मेरे हृदयको सुशोभित कर रही। मैं तुम्हारे हृदयका हार बना हुआ नित्य शोभा पा रहा और तुम्हारे वक्षस्थलको सुशोभित कर रहा। दोनों हम दोनोंमें मिल गये। मिले हुए हैं, मिले ही रहेंगे। हमारे भुक्ति, मुक्ति, हमारे लिये अग-जग संसार, हमारे लिये अपना पराया, हमारे लिये लेना-देना, हमारे लिये पाना और न पाना—ये कोई चीज कुछ भी रहा ही नहीं। हम दोनों नित्य एक, नित्य समरस, नित्य आत्मा, नित्य एक दूसरेके आधार और नित्य एक दूसरेके शृंगार बने हुए नित्य ही साथ रहते हैं। हमारे और तुम्हारेमें कभी वियोग नहीं होता। श्रीराधिकाजीने उत्तरमें कहा—बड़ी सुन्दर भावना—एकबार राधिकाजी बोलीं—

ये यहाँ सखीके वेशमें श्यामसुन्दर पास हैं और श्यामसुन्दरका सम्बन्ध जो राधाके साथ है वो राधा बता रही हैं—

वे प्रियतम मेरे श्याम प्राणधन प्यारे।
रहते नित मेरे साथ न होते न्यारे॥
खाने-पीने सोने जगनेके सारे।
करते वे सारे कर्म साथ ध्रुव तारे॥
वे घुले मिले रहते हैं मुझसे प्रतिपल।
जो देख न पायें क्षणभर होते व्याकुल॥
मेरा सुख ही है उनका सुख अति निर्मल।
वे रहते नित्य निमग्न उसी में अविकल॥
यों नित्य पास रहते भी मैं खो जाती।
खोकर फिर उनको मैं दुखिया हो जाती॥
रोती विलाप करती पर उन्हें न पाती।
मैं नित्य प्राप्त उन प्रियतम हित बिलखाती॥

लगता वे रहते दूर पास नहिं आते।
मुझ प्रेमहीन को क्या वे पास बुलाते॥
मैं रोती रहती सदा, न वे लख पाते।
वे नहीं इसी से खुद संयोग लगाते॥
वे हँसते मुझको देख भूल में भारी।
लख नित्य मिलन में अमिलन गति हिय हारी॥
कहते देखो, मैं पास तुम्हारे प्यारी।
सुधि होती खुलते नेत्र, चेत हो जाता॥
बढ़ता रसका अति वेग, परम सुख छाता।
प्रिय को नित पाकर साथ न हर्ष समाता॥

(पद-रत्नाकर /४७३)

इस प्रकारसे प्रिया-प्रियतमके प्रेमकी विचित्र-विचित्र तरंगें नित्य तरंगित होती रहती हैं—इस दिव्य परम पावन प्रेमके सुधा रस समुद्रमें। इन तरंगोंमें विविध भाव हैं उन्हीं भावोंके नाम प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव हैं। महाभावकी जो अत्यन्त ऊँची अवस्था है उस ऊँची अवस्थामें होनेवाले ये पूर्व प्रेमके भावोंका, प्रेमकी अवस्थाओंका प्रादुर्भाव जब होता है, तब विचित्र-विचित्र भाव लहरियाँ उन दोनोंमें एक ही दो बने हुए एक तत्वमें यह लहराने लगती हैं और रस परम दिव्यरस मुनि दुर्लभ है, देव दुर्लभ है, ब्रह्मादि दुर्लभ है और उसी रसमें अनुप्राणित उसी रसमें रसमय बने हुए ये दोनों खेलरत रहते हैं। इन्हींका खेल दिव्य प्रेमका परम आदर्श है। इसी खेलमें साथ रहनेवाले जो अत्यन्त उच्चकोटिके जो महान तत्व हैं। वे ही श्रीगोपिकाओंके रूपमें, गोपांगनाओंके रूपमें, सखियोंके रूपमें, मंजरियोंके रूपमें वहाँ लीला विलासके साथ लीला सहचर होकर, लीला सहचरी होकर रहते हैं। इनका मधुरतम दिव्यतम परम प्रकाशमय त्यागकी परमोत्कृष्ट स्थितिपर पहुँचा हुआ वो प्रेम नित्य, नित्य निरंतर विलसित रहता है।

इस प्रेमकी मधुर धारामें जो बहना चाहता है उसके लिये ये

आवश्यक है कि वो जगतके सुखोंको तिलांजलि दे दे। यहाँके भोगोंसे सर्वथा उपरत हो जाय। यहाँकी सारी अपनी ममताको, रागको, आसक्तिको, कामनाके विषयोंको, विषयानुभूतिको, भोग-मोक्षकी इच्छाको सर्वथा जलाकर भस्म करके उन परम प्रियतम प्रेम रूप श्रीश्यामसुन्दरकी प्रेमाकांक्षा करे और उनकी किसी अत्यन्त अनुगता मंजरीकी अनुगत दासी बनाकर उनके आदेशानुसार, उसकी इच्छानुसार, उसके भावानुसार अपनेको एक किंकरीके रूपमें परिणत करके श्रीराधा-माधवसे प्रेम-दीक्षा करे। राधा-माधव प्रसन्न होकर प्रेम देंगे। अवश्य देंगे।

नैन-मन जब तैं आइ बसे

नैन-मन जब तैं आइ बसे।
तब तैं आठौं जाम, दिवस-निसि, निमिषौ नाहिं खसे॥
सब के नैन प्रपंचहि निरखत, सब कें मन संसार।
इहाँ जगत आवन पावत नहिं, निरतत नंद-कुमार॥
ललित त्रिभंग पीत पट सोभित, गल गुंजन की माल।
मुकुट मयूर-पिच्छ, कुंचित कच, मृगमद-तिलक सुभाल॥
कर मुरली, कटि किंकिनि राजत, पग नूपुर-झनकार।
नील-स्याम-बदनारविंद पर काम कोटि सत बार॥
अधर मधुर मुसक्यान मनोहर, तिरछी चितवनि जाल।
मुनि-मन-बिहग अगम्य निरखि छबि आइ फँसत तत्काल॥
नित्य प्रकासित स्याम-सूर्य, तहँ जग-तम जात डराय।
दुस्साहस करि जाय कबहुँ जौ, बिनु मारें मरि जाय॥

(पद रत्नाकर/पद सं०-५०८)

भगवान्का हर विधान मंगलमय है

अखिल चराचरके रूपमें अभिव्यक्त भगवान्के नाते आप समस्त महानुभावों और माताओंके श्रीचरणोंमें मेरा नमस्कार। आज कई सुझाव आये हैं। उनमें लम्बे सुझाव दो हैं—भगवान्की बाललीलाका वर्णन और बाललीलामें एक सज्जनका सुझाव है दामोदर लीलाका वर्णन। ऊखल बन्धन लीला और इसके सिवा कई सुझाव और हैं तो कहा तो नहीं जा सकता कल क्या होगा? भगवान् जाने, पर यदि कल तक जीवन रहा और कुछ हुआ तो ऊखल बन्धन लीलाको कल कहनेका विचार है आज संक्षेपमें जो दूसरे दूसरे प्रश्न हैं उनपर कुछ कह देना है। कल जा रहा था रह गया।

'तेरे मन कुछ और हैं दाताके कुछ और'

भगवान्का मंगलमय विधान ही मंगलमय है। मनुष्यको असली बात सोचनी चाहिये। अच्छी बुद्धिसे विचारना चाहिये। भगवान् सद्बुद्धि दें। इस प्रकारसे कर्म करना चाहिये परन्तु भगवान्की मंगलमयी इच्छासे जो हो जाय उसीमें मंगल मानना चाहिये। पर एक सुझाव इसी विषयपर है कि भगवान्के विधानपर विश्वास कैसे किया जाय। शायद पहले भी दो बार इस विषयपर कुछ कहा जा चुका है।

भगवान् स्वाभाविक ही मंगलमय हैं। जितना भी अमंगल है, अशुभ है वो भगवानसे सम्बन्ध नहीं रखता। यद्यपि वैसे देखें कि भगवान्के सिवा कहीं कुछ है ही नहीं।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(गीता/७/१२)

जितने भी तामस भाव हैं। इनकी भी सत्ता भगवान्से ही है। परन्तु भगवान्की सत्ता होनेपर जहाँ-जहाँ तामस भावका प्रयोग है

वहाँ वहाँ भगवान्‌से सम्पर्क सूर्य उदय है। आसुरी सम्पत्तिका आश्रय है। भगवान्‌का मंगल विधान मंगलमय है, इसलिये है कि भगवान्‌में मंगल ही मंगल है। भगवान्‌में शुभ ही शुभ है।

एक बार नारदजी महाराजकी भगवान्‌से बातचीत हुई। भगवान्‌ने कहा कि मैं जो कुछ करता हूँ, मंगल करता हूँ। नारदजीने कहा—महाराज बहुत जगह अमंगल दीखता है और बिना आपके किये कुछ होता नहीं—ये हम जानते हैं। अमंगल दीखता है उसको मंगल कैसे मान लें? नारदजीने कहा—फिर कुछ दिखाइये। ये कथा तो बहुत लम्बी आती है। इसमें कई २५-२६ उदाहरण हैं और कुछ स्मरणकर लें उसका कुछ सांकेतिक रूपसे। नारदजी और भगवान् ये दोनों संतका भेष धारण करके मर्त्यलोकमें आये और एक जगह गये—एक बुढ़िया दादी अकेली, उसके घरमें सब मर गये। एक प्रपौत्र—पोतेका लड़का। पड़पोता छोटा-सा उसके रहा। बुढ़िया माईका, वात्सल्य था, मोह था। घरमें और कोई नहीं था। पर वो थी बड़ी भक्त। दिनभर भगवान्‌के भजनमें रहती लेकिन उस बच्चेका मोह उसको निरंतर बच्चेकी सेवामें ही लगाये रखता। दूसरा पालन करनेवाला था नहीं। कर्त्तव्य भी था। भगवान् संतके भेषमें। दोनों नारद और भगवान् उसकी कुटियापर पहुँचे। उस बिचारीने संत आ गये तो बड़ा स्वागत किया। सेवा सत्कार किया। जब जाने लगे तो भगवान्‌ने बच्चेको मार दिया। नारदजीने कहा—महाराज ये क्या किया? ये प्रत्यक्ष अमंगल कर दिया आपने। भगवान्‌ने कहा—चलो, आगे चलो। फिर बतायेंगे सबका रहस्य। फिर आगे बढ़े तो एक बड़े नगरमें एक कोठी रही किसी बड़े आदमीकी। उसमें गये तो बड़ा आदर सत्कार हुआ। संतोको ऊपर ले गये। स्वयं मालिकने उनकी सेवा की। मालकिनने सेवा की, सत्कार किया, जिमाया मजेमें। दोनों आराम करने लगे। वे लोग अपने

काममें लगे। कोई सन्देह था नहीं। उन्होंने क्या किया कि उनका हार चुरा लिया। हार रखा था, उसको लेकर झोलीमें डाल लिया तो नारदजी फिर बोले—महाराज! ये तो अमंगल कर दिया आपने तो कहा—ठीक! फिर बतायेंगे आगे चलो। आगे एक दूसरे नगरमें गये। वहाँ एक मकान, पहरा लग रहा। अन्दर जाने लगे तो पहरेदारने कहा—कहाँ जा रहे हो? कहा—बाबूजीसे मिलना है। पहरेदार बोला—बाबूजी अभी सोये हैं, नहीं मिलेंगे अभी। उन्होंने कहा—हमें जाना है। बाबूजीसे बात करनी है। बोला—नहीं, नहीं कह दिया न अभी सो रहे हैं, नहीं मिलेंगे। संत बोले—नहीं, हमको जाना है, अभी मिलना है। बाबूजीसे हमारा बहुत प्रेम है, काम है। कहा—जाते हो कि नहीं? बोले—हमको मिलना है। पहरेदारने गर्दन पकड़कर धक्का दे दिया।

भगवान् संतके भेषमें थे। दोनों गिर पड़े। उलटे गिरे फिर जब जाने लगे तो हार निकालकर वहाँ डाल दिया। नारदजीने कहा—महाराज! ये क्या किया आपने? भगवान्‌ने कहा—देखो, वह बुढ़ियाका जो बालक था वो वरुण लोकका एक देवता था। जो शापवश यहाँ आया था और उसका इतना ही काल था यहाँ रहनेका। हम उसको मारनेमें निमित्त बन गये। वह गया वरुणलोकमें और वह बुढ़िया जो रही वो बड़ा भजन करती थी पर उस बच्चेके मोहमें आसक्त थी। भजनमें विघ्न पड़ता था। अब चलकर देखो। दिन-रात भजन करती है। उसका संकट मिट गया। बताओ हमने किसीको मारा क्या? हमने मंगल किया कि अमंगल किया। उसका मंगल हो गया। वरुणलोकमें भेज दिया और बुढ़ियाका मंगल हो गया। भजनमें लग गयी। बताओ हमने अन्याय किया? बोले—महाराज! ये तो ठीक किया लेकिन जिसका हार चुरा लाये आप। उसने स्वागत किया, जिमाया और आप हार चुरा लाये—ये संदेहकी

बात। तब भगवान्‌ने कहा—उसका यह धन इस समय जाना था प्रारब्धवश। निमित्त हम बने। हम ले आये। वह साधु वेशका बड़ा भक्त था। ठगोंने, डाकुओंने एक षड्यन्त्र रच रखा था अभी कि साधुओंके वेशमें वहाँ जाकर उसे ठग लिया जाय, लूट लिया जाय तो हम अगर उस दिन हार न ले आते तो अबतक लुट गया होता। जिस दिन हम हार ले आये उसके जँच गयी कि ये साधु वेशवालोंका विश्वास नहीं करना। इसलिये उसने पहरा बैठा दिया कि कोई न आने पावे। उसका हार तो जाना ही था पर उसको हमने डाकुओंसे लुटनेसे बचा लिया। बताओ अमंगल किया क्या? नारदजी बोले—महाराज ये तो मंगल किया ठीक। जहाँ आपको धक्के लगे, मार खानी पड़ी वहाँ हार दे आये? इसमें क्या किया? भगवान् बोले—जैसे वह साधु वेशका भक्त था उसी प्रकार ये साधु नामका शत्रु था। रात-दिन कुसंगमें रहता। पहरा बैठा रहता अन्दर चाहे जिस प्रकारसे पापाचार करता। अब उसे जो खबर लगी कि साधु, दो महात्मा आये थे और उनके धक्के देनेपर वो हार डाल गये। उसके मनमें जँचा कि साधु तो महात्मा होते हैं। मारनेवालेका, धक्का देनेवालेका भी कल्याण करते हैं तब साधुओंका भक्त हो गया। उसने सारा अनाचार छोड़ दिया और सत्संगमें लग गया और उसको उस दिन धन मिलनेका योग था। बताओ हमने क्या अन्याय किया? अमंगल किया कहीं? भगवान् जो कुछ हमारे लिये करते हैं वो चाहे देखनेमें एक बार हमें अमंगल रूप दीखे और दीखता है, हमारी दृष्टि बहुत लम्बी नहीं है। हम तो बहुत नजदीकको चीजको देखते हैं कि ये हाय? हाय? हमारी हानि हो गयी।

एक बारकी बात मैं कलकत्तेसे बम्बई जानेवाला था। मुझे बुरा लगा कि ये सब क्यों हो गया। पर भगवान्‌का मंगल विधान और

एक अपनी बात बताऊँ कि नारायणदासजी मेरे पुराने मित्र हैं ...... जानते हैं बहुत कुछ बात। १९१६ में जब बंगाल सरकारने हमलोगोंका गिरफ्तार कर लिया उसके पहले यद्यपि थोड़ा बहुत मेरा झुकाव इस तरफ था। मेरी दादी थी घरकी व्यवस्थाके कारणसे। लेकिन सामाजिक, राजनीतिक काम हमलोग करते थे। छोटी उम्र थी। पौने दो साल भगवान्‌ने अलग भेज दिया। पौने दो साल तक बंगालमें। सेठजीका जो शहर है बाँकुड़ा। बाँकुड़ासे २४ मील दूर एक छोटेसे कस्बेमें एक छोटासा गाँव था जहाँ रेल नहीं जाती थी। वहाँ ताँगे इक्के नहीं जाते थे। बैलसे जाना पड़ता था और रास्तेमें दो नदियाँ पार करनी पड़ती थी तो सरकारने मुझे वहाँ रखनेकी व्यवस्था की और मैं वहाँ गया। पौने दो सालतक मैं वहाँ रहा। ये पौने दो साल मेरे जीवनके सबसे अधिक मूल्यवान थे। सबसे अधिक लाभ, सबसे अधिक जीवनको मोड़ देनेवाली चीज उन पौने दो वर्षमें वहाँ हुई। उस समय पकड़ा जाना बुरा भी लगा। एक बार तो बड़ी निराशा हुई। घरमें कोई था नहीं। पिताजीकी मृत्यु हो चुकी थी। मेरा विवाह हुए तीन चार महीने हुए थे। घरमें पैसा नहीं था। मेरी बूढ़ी दादी थी, माँ थी, मेरी दो बहनें थीं कलकत्तेमें और उस समय जमाना ऐसा था। आज तो राजनैतिक कैदियोंका रिहाई मिलते ही मिनिस्टरी मिलती है। उस समय महाराज हमारे यहाँ एक गीता रही। इनको पता है। ये उस समयके मंत्री थे। गायके सम्बन्धमें एक समिति थी। गीताके मुखपृष्ठपर एक तस्वीर थी अर्जुनकी। शायद उसके हाथमें गीता, एक हाथमें तलवार था। भारतमाताके चित्रमें। मुझे ठीक याद नहीं है पर शायद वो गीता उनपर दबाव डालकर लोगोंने जलवा दी। मुझे ठीक याद नहीं कि जलवा दी या फेंकवा दी। पन्ना फाड़ दिया होगा इतना डर था उस समय। हमारे घरके लोग, हमारे

मित्र, हमारे सम्बन्धी और कलकत्तेके सारे मारवाड़ी लोग, दो-चार को छोड़कर सब हमारे विरोधी थे। कोई भी सहानुभूति नहीं प्रगट करता। इसलिये मनमें दुःख भी हुआ, निराशा भी हुई कि ये भगवान्ने क्या किया? लेकिन भगवान्ने इतनी सुन्दर व्यवस्था की वहाँ। उस समय सहानुभूति करनेवालोंमें एक बात आ गयी। एक थे जयदयालजी। वे जब कलकत्ते आते तो हमारे घर आते और बाँकुड़ासे इनका हिस्सेदारीका काम था। हमारे मामाजी थे नागरमलजी। वे उनके भी मामा होते। वे मेरे मौसेरे भाई हैं सेठजी। वहाँ आटा नहीं मिलता था। बंगाली थे सब, हिन्दुस्तानी एक भी नहीं। हिन्दी बोलनेका मुझे काम नहीं पड़ा। केवल बँगला बोलना था। बंगालियोंमें रहना था गाँवमें। वहाँ आटा वे मेरे लिये भेजते थे। वहाँ आटा नहीं मिलता था। और चीजें भी भेजते थे, सम्भाल रखते और घर आते। इसके अतिरिक्त दो एक सज्जन और थे। एक रामकुमार गोयनका थे, अब भी हैं और भी निकट से निकट थे। उनका कोई दोष नहीं। वह समय ऐसा ही भीतिका था तो वहाँ क्या हुआ मेरे मनमें तो पहले निराशा हुई, दुःख हुआ। उसके बाद यह हुआ कि अब समय मिल गया है भगवान्में मन लगाना चाहिये। अपने आप भगवान्ने प्रेरणा की। तो वहीं मेरा नामजप शुरू हुआ था जेलमें। जेलमें नामजप शुरू हुआ पर नामजप मेरा वहाँ बढ़ा, खूब बढ़ा। और वहीं मैं बंगला जानता था। एक बंगाली शिक्षक थे चन्द्रराय। वे पोस्ट मास्टर थे। नियम तो यह था कि मुझसे कोई शिक्षा विभागका आदमी सरकारी आदेशके अनुसार मिल नहीं सकता। ये निमानियत थी। पर उनसे मेरा प्रेम, उनके पास बहुत बंगला साहित्य था। मैंने वैष्णव साहित्यका पढ़ना प्रारम्भ वहीं किया तो उधर स्वाध्याय हुआ, उधर नामजप हुआ। तीसरी चीज मेरे

पास रविवर्माका एक चित्र था बनाया हुआ ध्रुवनारायणका। उस चित्रके आधारपर मैं ध्यान करने लगा। ध्यान, नामजप, स्वाध्याय। बचा कोई नहीं क्योंकि उस गाँवके बाहरके आदमी कोई मिल नहीं सकते थे कानूनन। रातको मेरे पास कोई आता ही नहीं था। पत्र व्यवहार भी बड़ा सीमित क्योंकि पुलिसके मार्फत होता। वहाँ जो एकान्त मिला पौने दो साल तक उसने मेरे जीवनको बिलकुल परिवर्तित कर दिया। उधरसे बिल्कुल मोड़ दिया। इधर लगा दिया। अगर वह जेल न हुई होती, वो नजरबन्दी नहीं हुई होती तो शायद किस तरफ जीवन जाता। भगवान् जो कुछ करते हैं हमें एक बार चाहे बुरा लगे पर वे हमारे मंगलके लिये करते हैं। उसमें जरा भी संदेह नहीं। उससे हमें लाभ उठाना चाहिये। भगवान्की ओरसे जो कुछ भी फल रूपमें प्राप्त हो जाय उसपर असंतोष न करके निरंतर ये समझना चाहिये कि ये भगवान्की बड़ी कृपा मैं जेलमें रहा तो अलीपुर जेलमें था। अलीपुर जेलमें मैं तो अब मेरे मनमें। वो एक पहरा देता था, वह यू०पी०का कोई आदमी था। बूढ़ा था सिपाही। मैंने उससे कहा कि भाई मैं थोड़ा नामजप करना चाहता हूँ। कुछ मनमें आया तो माला ला दो। वह मेरे नामजपका पहला गुरू समझिये। उसने कहा—माला मैं कहाँसे ला दूँ, यहाँ है नहीं। तुम एक काम करो। उसने कहा—तुम एक कील ले लो। एक कील उसने लोहेकी ला दी। कहा—अँगुलीसे गिनती करते रहो। अब ये मेरेमें उस समय बुद्धि नहीं थी कि बिना संख्याके करें नामजप। क्या हर्ज है। उसने कहा—अँगुलीपर गिनती करो और एक माला पूरी हो जाय तो दीवालपर एक लकीर खींच दो। उसने युक्ति बतायी और उस युक्तिसे मेरा नामजप चला। अलीपुर जेलकी कालकोठरीमें था। अलग रखा गया था बिल्कुल अलग। गवर्नमेंटने........माना

था। वहाँ कालकोठरीमें रहा तो वहाँ खूब नामजप हुआ दिन-रात। लाख होता था, दो लाख या तीन लाख कुछ पता नहीं। बस, मेरे सोनेके समय और भोजनके समयको छोड़कर। भोजन भी फिर घरसे आने लगा। भोजनके और सोनेके समयको छोड़कर बाकी समय दिनभर नामजप चला। वही नामजप फिर वहाँ शिमलापालमें पौने दो सालतक जीवनका साथी हो गया निरंतर। बल्कि यहाँतक होता—ये कुछ सीखनेकी बात है। मैं शिक्षाके रूपमें तो नहीं कहता पर ये सीखनेकी चीज मेरा ऐसा मन रहता नामजप कैसे होना चाहिये? इसपर मेरा मन रहता कि कोई आ न जाय। कोई आ जायेगा, बात करेगा तो मेरे नामजपमें बाधा पड़ेगी इसलिये चाहता कोई आ न जाय। यहाँ आनेवाले थे बहुत कम। गाँववाले लोग तो मेरे पास आने लगे थे। पहले-पहले तो बिचारे बहुत डरते थे इसलिये कोई आता नहीं। लेकिन मेरे मनमें रहता कि कोई आ न जाय। अगर कोई आ गया तो बातचीत करनी पड़ेगी तो मेरा नामजप टूट जायेगा। बड़ा घाटा पड़ेगा। यदि कोई आ जाता मैं सोचता अपने मनमें ये बोले और मुझे कम बोलना पड़े तो अच्छा क्योंकि अधिक बोलनेमें बात बढ़ जायेगी तो नामजप टूट जायेगा। नामजपमें ये बुद्धि हो गयी थी वहाँपर कि ये परम सम्पत्ति है तो ये छूटनी नहीं चाहिये। फिर यदि कोई बैठता तो मैं चेष्टा करता कि जल्दी उठ जाय और कोई आदमी अपनी बात बोलके चला जाता। ऐसा मौका होता कि मुझे नहीं बोलना पड़ता तो बड़ी प्रसन्नता मनमें होती कि आज भगवान्ने बचा लिया। एक दो मिनटके लिये भी नामजप टूटा नहीं। इस तरहसे महाराज उस समय वृत्ति थी। वह वृत्ति आज नहीं है। आज तो उससे पतन है इस वृत्तिकी दृष्टिसे। लेकिन उस समय नामजप छूटता कैसे? नामजप तो जीवनकी

सम्पत्ति हो गया। इसीका फल मिला इस तरफ लगनेका। पौने दो सालतक वहाँ शिमलापालमें जो नामजप हुआ वही सारी भूमिका है।

ध्यानकी बात कहूँ। हम लोग कहते हैं कि ध्यान लगता नहीं। सच्ची बात ये है कि ध्यान लगानेकी जितनी दिलकी कोशिश होनी चाहिये उतना हमसे होता नहीं। हमारा बिखरा हुआ मन है ना। ध्यानका अर्थ है कि ध्येय वस्तुमें मनकी एकाग्रता हो। हमारा मन बहुत बिखरा है—कभी ये कभी वो। वहाँ भगवान्ने सहायता की कि अलग रख दिया। अब घरकी बात, घरके बाहरकी बात, व्यापारकी बात, और कोई बात अपने आप याद आनी बन्द हो गयी। निराशा हो गयी कि यहाँसे अब छूटना शायद हो नहीं। उम्र भर यहीं रहना है। अब क्या है? पहले-पहले तो दुःख हुआ, फिर दुःख नहीं हुआ। ये वृत्ति लगने लगी। मेरी वृत्ति जैसे ये कृष्ण भगवान्की मूर्ति है। वह चित्र था। उसमें ध्रुवका चित्र और नारायणका चित्र। ध्रुवको तो मैंने छोड़ दिया और नारायणके चित्रके एक-एक अंगका, अवयवका मैंने अच्छी तरहसे मनमें उसको धारण किया। ऐसे हाथ हैं, ऐसे पैर हैं, ऐसी आँख, ऐसी नाक, ऐसे कान ठीक ठीक धारण करके मैं तीन बार दिनमें बैठता नियमित प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व तीस मालाका जाप करके फिर सो जाता। नियम था मेरा। उसके बाद ये ध्यान करता दोपहरको भोजनके पश्चात् ध्यान करता और रातको आठ बजे ध्यान करता। आठ-नौ बजे जितनी देर लग जाय। उस समय, समय तो था ही और कोई काम तो था नहीं। मेरे मनमें इतना विष्णु भगवान्का स्वरूप जँच गया था कि मानो मनकी चीज हो गयी जैसे पेटीमें कोई चीज रखी हो और खोलकर कहा जाय निकाल लो, इस प्रकारसे। मेरी वृत्तिने उस चित्रके रूपको पकड़ा। उसमें दर्शन नहीं था।

मानस चीज थी उस चित्रके रूपको इतना पकड़ लिया कि वो बस आँख मूँदे तो दिखायी दे। फिर मैंने सोचा कि जब आँख मूँदे दिखायी देता है तो खुले देख लेते हैं। पहले दिनकी बात है एक गाय थी। गाय जा रही थी और मैं बैठा था उस झोपड़ीमें। छोटी-सी झोपड़ी थी। अब भी है। मैं गया था गत साल वहाँपर। झोंपड़ीमें बाहरकी तरफ मैं बैठा था। एक गाय खड़ी तो मेरे मनमें आया कि ये गायकी जगह हम ध्यान करें। गायकी जगह जहाँ मेरी वृत्ति गयी वह गाय नहीं दिखायी दी और मैंने विष्णु भगवान्को देखा। तब मेरे मनमें जँच गया कि मेरा ध्यान सिद्ध हो गया। फिर तो उड़ते पक्षीमें, आदमीमें, गायमें, पेड़में, फूलमें—इन सबमें मैं उसको देखने लगा और ये ध्यान इतना परिपक्व हो गया कि आजकल मैं विष्णु भगवान्का ध्यान नहीं करता। मेरी उपासनामें नहीं है लेकिन वो मूर्ति इतनी मनने पकड़ ली है। अब वो सामने मूर्ति है इस समय मेरे सामने याद आ गयी। अब मेरे सामने मूर्ति है। ये कोई सिद्धि नहीं है। ये सुदृढ़ अभ्यासका फल। दृढ़ भूमि जब अभ्यासकी हो जाती है तो वो अभ्यास उसका स्वभाव बन जाता है। ध्यान इसलिये नहीं होता कि ध्येयाकार वृत्ति हमारी नहीं बनती। ध्येयाकार वृत्ति बन जाय और वह वस्तु हमारे मनमें आकरके ठहर जाय और चाहे जब उसका ध्यान कर लो। अगर पौने दो साल न मिले होते तो ये वृत्ति टिकनेका अभ्यास नहीं होता। बड़ी चंचल वृत्ति थी। सामाजिक काम, राजनीतिक काम—इनमें वृत्तिकी चंचलता ही चंचलता। ये पौने दो सालने मुझको नाम दिया और मुझको ध्यान दिया और मुझको साहित्य दिया, स्वाध्याय दिया तो स्वाध्याय, ध्यान और नामजप इन तीनोंके देनेमें सरकारके द्वारा, पुलिसके द्वारा भगवान्ने सहायता करवायी। अलग रखा और ये वृत्ति दी। ये वृत्ति न देते और कोई वृत्ति दे देते,

रोते वहाँ पड़े या वहाँपर भी और कुछ खुराफात करता, कौन रोकता था, तो समय दिया, एकान्त दिया, निश्चिन्तता दी और इसके साथ-साथ साधन दिया। भगवान्की कृपापर अगर मनुष्य निर्भर करे और भगवान्के प्रत्येक विधानमें मंगलमयताका विश्वास करे और इससे लाभ उठाये तो प्रत्येक फल बुरे से बुरा उसको अच्छी स्थितिमें ले जा सकता है।

एक आदमी हमारे मित्र थे उनके पास पहले पैसा नहीं था। बड़े सज्जन थे, बड़े सद्भाव थे, बड़े अच्छे थे। लोगोंकी सेवा करते, गरीबोंकी सेवा करते। जहाँतक अपनेसे बनता अच्छे से अच्छा काम करते। धीरे-धीरे पैसा आया, पैसेके साथ प्रमाद आ गया। सारी सेवा छूट गयी। सारा अच्छापन निकल गया। बहुत तरहकी बुराइयाँ उनमें आ गयीं। फिर भगवान्ने कृपा की। भगवान्ने कृपा की पैसा चला गया।

भगवत् कृपा आना और जाना दोनोंमें ही कृपा है। ये सबका छीनते नहीं, सबको देते भी नहीं। पर जहाँ देते वहाँ भी कृपा करते हैं। जहाँ छीनते हैं वहाँ भी कृपा करते हैं। भागवतमें कहा है—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।

(श्रीमद्भा० ।१०। ८८। ८)

भागवतमें कहा, लोग डर जायेंगे सुनकरके। भगवान्ने कहा कि जिसपर मैं कृपा करता हूँ उसके धनको धीरे-धीरे हर लेता हूँ। ये भगवान्की कृपा वहाँ भी होती है। बलिका तमाम राज्य हर लिया महाराज। पर फिर बलिने अनुभव किया कि भगवान्ने मुझपर बड़ी कृपा की थी और न मालूम क्या कर बैठता, कितना प्रमाद होता। भगवान्ने प्रमादसे बचाया।

तो मेरे वे मित्र रहे, भगवान्की कृपा उनपर हुई, पैसा आ गया, उन्होंने सचमुच कृपा मानी क्योंकि उनकी जो गयी हुई सद्वृत्तियाँ

थीं वो फिर लौट आयीं। वह भगवान्‌का भजन करने लगे। पैसा तो गया पर पैसा जाना उनके लिये अच्छा हुआ। ऋषि अरविन्दका नाम तो आपलोग जानते होंगे। ये विलायतमें आई.सी.एस. की परीक्षामें घुड़सवारीमें फेल हो गये। अगर घुड़सवारीमें फेल न होते तो कहींके कलक्टर होते। और क्या होता? यूरोपसे लौटकर कहीं आफीसर होते। ये जीवन थोड़े ही मिलता। पर भगवान्‌ने कृपा की। आई.सी.एस. की परीक्षामें घुड़सवारीमें फेल हो गये। बस फेल होनेके बाद उनकी वृत्ति बदली। पूरे अंग्रेजी थे, बंगला तक नहीं जानते थे। वहीं पर रहे, पले। उनके माँ-बाप वहीं थे, वहीं पले, वहीं बढ़े। फिर यहाँपर आये। देशकी तरफ वृत्ति गयी। हृदयमें देशभक्ति जागी। बड़ौदामें पहले दीवान थे। वहाँ छोड़कर कलकत्ता नेशनल कालेजमें प्रिंसिपल होकर आ गये। उसके बाद अब उनका अरविन्ददास नाम विख्यात था। आप जानते हैं महान् योगी, महान् भक्त हुए, माने गये।

भगवान् कब, किस रूपमें कृपा करते हैं—ये हम जानते नहीं। भगवान्‌की कृपा कहीं बड़े भयानक रूपमें आती है। भयानक रूपमें, अपमानके रूपमें, विनाशके रूपमें, संहारके रूपमें, वैधव्यके रूपमें और कभी बड़े सौम्यके रूपमें आती है। पर आती है भगवान्‌की कृपा। उस कृपाका निरंतर स्वागत करना चाहिये। हे भगवन्! किसी रूपमें तुम भेजो पर अपनी कृपाको भेजते रहो और कृपाका अनुभव होता रहे इस रूपमें। आपकी कृपा मुझको निहाल करने आयी है, निहाल करने आयी। जीवन बदल जाता है महाराज!

नरसीजीका जीवन कैसे चलता। नरसीजी अपने मामाके घर रहते थे। माता-पिता मर गये थे। नरसीजीका अपना लिखा ग्रन्थ है गुजरातीमें। जो नरसीजीका मायरा है। वह तो कल्पित ही है पर बड़ी सुन्दर। उनका एक गुजराती ग्रन्थ है। उसमें उनकी जीवनी

है गुजराती पदोंमें। वह अपने मामाके घर रहते। अब घरमें कोई था नहीं। धीरे-धीरे वे भजन-कीर्तनमें जाने लगे। उसमें उनका मन लग गया। भजन कीर्तनमें देर-देरसे आते। आपके मामाके लड़के थे, बड़े भाई। उनकी स्त्री उनकी भाभी रही। बेचारी परेशान रहती। कभी दिनमें दो बजे आवें, कभी तीन बजे आवें। बेचारी रसोई लिये बैठी रहें। कभी रातमें १२ बजे, १ बजे आवें। ये आवारा माने जाते। आवारा—फालतू, जहाँ तहाँ फिरते। जाते कीर्तनमें ही, किसी बुरे काममें नहीं। एक दिन ये देरसे आये, बहुत देरसे आये तो भाभीने कहा—कहाँ गये थे? कहा—कीर्तनमें गये थे। इतनी देर क्यों की? बोले—भगवान्‌का कीर्तन हो रहा था। बड़ा आनन्द आया। भाभी बोली—ऐसे भगत होते तो भगवान्‌से मिलकर आना था। अब भाभीके उद्गार जरा व्यंग्यके भावमें कहा भाभीने तो नरसीजीने कहा—अच्छा। अब मिलकर ही आयेंगे। घरसे निकल गये, जल्दी निकल गये। वहाँसे १८ मील दूर एक शिवजीका मंदिर है। वहाँ हमलोग गये थे। उस मकानमें एक शिवजीका मंदिर है वहाँ जाकर ये नरसीजी बैठ गये और बड़े श्रद्धालु और बड़े विश्वासी। शिवजीसे कहा—महाराज! अब तो मुझे कोई ऐसा चाहिये जो मेरे मनोरथको सफल कर दे, मुझे मार्ग बता दे। अब शिवजीका भजन करने लगे। १८-२० दिन बाद रातको शिवजीने दर्शन दिये। शिवजीने पूछा नरसीसे कि तुम क्या चाहते हो? जो मनमें हो सो माँग लो। पर भगवान्‌की कृपा मुँहसे बड़ी सुन्दर बात निकली कि भगवन् जो आपको सबसे अधिक प्यारा हो वो मुझे दिखा दो। ये पुस्तक में लिखी हुई बात मैं आपसे कहता हूँ, सुनी हुई नहीं। आप मँगाकर देख सकते हैं गुजराती पुस्तक। वहाँ उन्होंने भगवान्‌की लीलायें देखीं। उन्होंने लिखा है उन लीलाओंको क्या-क्या देखा। उसको देखकर फिर ये लौट करके आये तो फिर ये महान भक्त

बने। महान भक्त रहे। फिर भाभीके पास आये और बोले—भगवान्से मिलकर आया हूँ। भाभी निहाल हो गयीं। उन्होंने कहा—ये तेरी कृपासे काम हुआ।

ध्रुवजीको अगर छोटी मैया गोदके नीचे नहीं उतारती तो ध्रुवको क्या भगवान् मिलते? वहाँ भगवान्का मंगल विधान। छोटी मैयाके गोदमें जाके वो बैठा उसका बेटा। ये भी जाकरके गोदमें बैठ गया। मैया आयी, छोटी मैयाने उसको उतार दिया। उतार दिया नीचे। उसने कहा—क्यों? वो समझता था कि बापकी गोद तो बेटोंके लिये ही है। मैं ही बैठ जाऊँ। कोई बात थोड़े ही थी। लेकिन उसने उतार दिया। रोने लगा। अब पिताजी थे वे उसके जरा अधीन। उनको दु:ख तो हुआ ध्रुवके प्रति। उनके मनमें प्रेम था, स्नेह था पर उससे दबते थे। कुछ बोले नहीं उदास होकर रह गये। पिता कुछ बोले नहीं और मैयाने उतार दिया। ध्रुवको बड़ा रोष आया, बड़ा दु:ख आया और ध्रुवने कहा—मैया, क्यों उतार दिया? बोली—तू मेरी कोखसे पैदा हुआ होता। मेरी कोखसे पैदा हो, भगवान्का भजन कर और मेरी कोखमें आ तब इस गोदमें बैठने लायक होगा। उपदेश मिल गया था। व्यंग्य था उसका। माँके पास गया। रोता हुआ माँके पास पहुँचा। रोया माँके सामने, छोटा बच्चा। बड़ा दु:ख, उतार दिया पिताजीने गोदसे। माँने कहा—बेटा, रोते क्यों हो? कहा—पिताजीने उतार दिया। माँने कहा—अब हम इसी लायक हैं। तुम क्यों बैठे? बोला—पिताजीकी गोद थी, बैठ गया। छोटी माँने क्या कहा? बोले—माँने कहा कि भगवान्का भजन करके मेरी कोखमें आओ तो बैठोगे। मैया सत्य थीं। मैयाके मुखसे निकल गया कि बात तो सच्ची कही। भगवान्के भजन बिना कुछ नहीं होगा। उसको तो मैयाने कहा—भगवान् कहते हैं

कि मैयाने कुछ भगवान्का हुलिया बता दिया। ध्रुवजीको उपदेश मिल गया। मैयाने बहुत रोका। पर ध्रुव बच्चा रुका नहीं। चल दिया जंगलकी ओर। मैया रोती रही—हे भगवान्! बच्चेका कल्याण करो, बच्चेकी रक्षा करो। अब वो रास्तेमें। जिसको सच्ची लगन होती है उसके पास साधन भी भगवान् भेजते हैं। हमलोगोंको पथ-प्रदर्शक नहीं मिलता। क्यों नहीं मिलता? हमारी चाह ही सच्ची नहीं है। भगवान् अगर देखें हमारी ओर कि ये सचमुच आना चाहता है तो भगवान् अन्धे नहीं हैं और भगवान् व्यवस्था करनेमें असमर्थ भी नहीं हैं। भगवान् जान लें कि मेरी ओर आ रहा है तो उसके लिये सारी व्यवस्था कर दें। नारदके मनमें प्रेरणा थी, ध्रुवके पास रास्तेमें आकर मिले। ध्रुवने प्रणाम किया। नारदजीने कहा—कहाँ जाता है? कहा—तप करने जाता हूँ भगवान्का। बोले—क्यों? भगवान्से मिलना है। नारदजी सब जानते थे। देखा, बच्चा भोला है। भगवान्से मिलनेकी जरूरत क्या है? जरूरत यह है कि पिताने गोदसे उतार दिया। उनकी गोदमें बैठना है, राज्य लेना है। बोले—अच्छा, तू चल मेरे साथ मैं तुझे राज्य दिलवा दूँ तेरे पिताके पास चलकर। बोले—ना! ना! आपको नहीं देना है। यही तो प्रश्न है। भगवान्से मिलकर लेना है। नारदजीने सोचा—लोभसे यह तो हटा नहीं। साधकके सामने दो चीज आती हैं विघ्नके रूपमें—एक प्रलोभन, एक भय। प्रलोभनसे नहीं हटा तो नारदजीने डर दिखाया। बोले—देख, वहाँ माँ बैठी है क्या? जंगलमें, वहाँ न खानेको मिलेगा, न पीनेको मिलेगा। वहाँ न मालूम कितने जंगली जानवर हैं? प्रेत-पिशाच हैं, न मालूम क्या-क्या होगा? तू छोटा-सा बच्चा क्या खायेगा? क्या पीयेगा? कहा—भगवान् तो हैं। ध्रुव बोले—मैं तो जाऊँगा, कोई भय लगे। नारदजीने सोचा—अधिकारी शिष्य है। गुरू अधिकार देखते हैं और दीक्षा दे दी। कहा—

'ओम नमो भगवते वासुदेवाय' द्वादशाक्षर मन्त्रका जाप करोगे तो भगवान्‌की कृपा होगी। भगवान्‌की कृपा हो गयी। ध्रुवको अगर गोदसे न उतारा होता, ध्रुवका अपमान न हुआ होता तो ध्रुव कहीं जाता? भगवान् न मालूम किस तरहसे, किस प्रकारसे अपनी मंगलमयी कृपा उतारते हैं जीवोंपर। हरेक जहाँ-तहाँ पर प्रतिकूल परिस्थिति हो वहाँ-वहाँपर खास तौरसे भगवान्‌की कृपाका अनुभव करना चाहिये कि भगवान्‌ने ये मंगलमयी कृपा की है मेरे कल्याणके लिये उसका सदुपयोग कर लें। सुखकी स्थितिमें मनुष्य अभिमान करता है। यह हमलोगोंका इस प्रकारका एक स्वभाव बन गया है। जब हम अभिमान करते हैं तब भगवान्‌को याद नहीं करते और अभिमान हमने कर लिया कि अपनी बुद्धिसे, अपने पुरुषार्थसे हमने सफलता प्राप्त की। हमने अपना निर्माण किया, हमने देशका निर्माण किया। न मालूम क्या-क्या अभिमान करते हैं और जब असफलता होती है तो भगवान्‌को याद करते हैं। पर करते हैं दोषीके रूपमें। भगवान्‌ने अन्याय कर दिया। ये बहुत बुरा किया भगवान्‌ने। भगवान्‌ने हमपर अकृपा की। भगवान्‌का हमने क्या बिगाड़ा था। ऐसा लोग कहते हैं कि हमने क्या बिगाड़ा था भगवान्‌का। भगवान्‌ने हमारे साथ अन्याय किया, हमें दुःख दिया। भगवान्‌ने हमारी यह चीज हर ली। भगवान्‌को याद नहीं करते और करते हैं तो अपराधीके रूपमें, दोषीके रूपमें भगवान्‌को याद करते हैं। अमंगल हमारे साथ रह जाता है। पर उस समय भगवान्‌की दयासे यह बुद्धि हो जाय। हम याद करें उस चीजको कि भगवान्‌ने बड़ी कृपा की, बड़ा अनुग्रह करके, दुःखके रूपमें, निराशाके रूपमें, संहारके रूपमें, अपमानके रूपमें, निन्दाके रूपमें भगवान्‌ने अपनी कृपाको भेजा है। उस कृपाको हम गले लगा लें। उस कृपाका हम स्वागत करके अपने साथ रख लें और भगवान्‌को धन्यवाद

करें। जो दुःखमें भगवान्‌की कृपा मानता है वह असली मानता है। सुखमें तो आदमी मानता ही नहीं और मान लेता है तो ठीक, उतनी महत्वकी बात नहीं। दुःखमें भगवान्‌की कृपा मानता है और दुःखमें जो भगवान्‌को ठीक-ठीक नहीं देख पाता है, विचलित हो जाता है। हम भगवान्‌का सौम्य रूप, सुन्दर रूप तो देखना चाहते हैं पर वीभत्स रूप, भयानक रूप नहीं देखना चाहते। हम कहते हैं यह नहीं चाहिये हमको। हमको तो सुन्दर चाहिये। पर भगवान् वीभत्स रूपमें, भयानक रूपमें भी आते हैं। जो भयानक रूपमें भगवान्‌को पहचान ले, विकट रूपमें, बड़े वीभत्स रूपमें भी भगवान्‌को पहचान ले। बड़ी दुःखकी स्थितिमें नरसीजीका लड़का मर गया। एकमात्र लड़का था। जवान लड़का और बड़ा भक्त लड़का था, पिताका आज्ञाकारी था। यह बात याद रखनेकी है कि किसीका मरना न चाहे। ये तो हिंसा है, किसीका मरना चाहना हिंसा है। वह चीज जब हमारे पाससे निकल गयी फिर भगवान्‌का मंगल विधान माने, फिर रोये नहीं। नरसीजी मरना नहीं चाहते थे अपने बच्चेका पर वो मर गया। मरते ही बुद्धि बदली और भगवान्‌ने उनकी बुद्धिमें ये बात पैदा की कि ये तो भगवान्‌ने बड़ा मंगल किया। ये बीचमें कुछ बखेड़ा था कि इसको तो भगवान् अपने धाममें ले जायेंगे। कोई बात नहीं ये बखेड़ा था, झंझट था। भगवान्‌ने झंझट हटा दिया। अब मैं सुखसे भजन करूँगा। वहाँ नरसीजीका एक पद है—

भलु थयुं भांगी जंजाल सुखे भजेंशु श्रीगोपाल

—गुजरातीका पद है। बड़ा अच्छा हो गया, जंजाल कट गया। अब बड़े सुखसे भगवान्‌को भजूँगा।

अरे! बेटा तो मर गया था। रोते-कराहते तो बेटा वापस आता क्या? भगवान्‌को गाली देते तो अपराध ही होता। बेटा तो वापस

आता नहीं और इस प्रकारसे उसको मंगल विधान भगवान्‌का मान लिया तो उसी समयसे सुखपूर्वक भजन होने लगा। प्रत्येक अवस्थामें, विपरीत अवस्थामें, प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्‌के मंगलविधानका दर्शन करना। जब जब प्रतिकूल परिस्थिति हो, दुःख होता है। मैं जितना कह देता हूँ उतना कर नहीं पाता। सच कहता हूँ आपसे। यह उपदेशकी बात है। अपनेमें तो होती नहीं पर होनी चाहिये कि दुःखके समय जब विचलित कर दे वो दुःख, इस प्रकारका दुःख हो उस समय भगवान्‌की कृपाके दर्शन हो, उस समय भगवान्‌की कृपाकी स्मृति हो, उस समय भगवान्‌के कृपाका आश्वासन मिले कि तुम्हारा मंगल हो रहा है। तुम्हारा परम मंगल हो रहा है। तुम्हारा ये विनाश नहीं है। ये तुम्हारी हानि नहीं है। तुम्हारा इसमें परम लाभ है। वास्तवमें परम लाभ है पर हमको दीखता नहीं। हम उसको अपनी दृष्टि, वो दूरदर्शिनी न होनेके कारण हम उसकी उपलब्धि नहीं कर सकते। परन्तु भगवान्‌का हर विधान मंगल होता है। इसके बहुत से उदाहरण हैं। मैंने इसके कुछ प्रयोग करके देखे हैं और कई लोगोंकी चीज मैंने इकट्ठा करनेकी चेष्टा की है। मुझे ऐसा ठीक ठीक मालूम हो गया कि जितनी भी विपत्तियाँ आती हैं, जितने भी दुःख आते हैं, संकट आते हैं एक बार बड़े भयानक, बहुत हताश कर देनेवाले और संभव है कि कुछ कालतक ये दुःख बढ़ता चला जाय। ये दुःखका एक काल होता है। इसकी समाप्ति नहीं होती। समाप्ति जहाँ होती है उसके बाद वह बिल्कुल पलट जाता है और वो मंगलमय बन जाता है। इसलिये प्रत्येक परिस्थितिमें जो फलरूपमें हमें प्राप्त हो, अनिवार्य है—'मा फलेषु कदाचन'

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संङ्गोस्त्वकर्मणि॥

(गीता/२/४७)

'मा फलेषु कदाचन' फलको हम बदल दें। फल हमारा मनचाहा हो जाय ये बहुत कठिन, असंभव तो नहीं पर बहुत कठिन। लेकिन प्रत्येक फल हमारे लिये मंगलमय है इसमें कोई संदेह नहीं। जहाँ पर भी दुःख हो, अपमान हो, निन्दा हो वहाँपर दो भाव याद करे या तो भगवान्‌की कृपा और इसमें भी ऊँचा भाव है। स्वयं भगवान् इस वेशमें हमको आलिंगन करने आ रहे हैं। बड़ा मधुर भाव है—

मत्युः सर्वहरश्चाह—भगवान्‌ने कहा—मैं मौतके रूपमें आता हूँ।

देख दुःखका भेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥
नाथ छिपालो तुम मुँह अपना चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें एक कोनेमें जग सारे में।

सिंहके रूपमें हमारे पिता अगर आ जायँ हम इनको पहचान लें तो डरेंगे क्या हम? तो प्रत्येक वेषमें, प्रत्येक रूपमें वही तो आते हैं—

देख दुःखका भेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥
नाथ छिपालो तुम मुँह अपना चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें एक कोनेमें जग सारे में।
रोग शोक भय हानि दुःख अपमान घोर अति दारुण क्लेश।
सबसे तुम सब ही हैं तुममें अथवा सब तुम्हरे ही भेष॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मरण साज सज यदि आवो तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख धारण कर नाथ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥

बड़ा सुन्दर प्रत्येक दुःखके वेषमें, मृत्युके रूपमें भी, अपमानके रूपमें, निन्दाके रूपमें आवें तो भगवान्‌को पहचान लें। इस रूपमें ये स्वांग धरकर, ये वेश धरकर, ये बहुरुपिया हैं न मालूम किस

रूपमें आता है अपनी कृपाको बिखेरता हुआ, अपनी कृपाकी वर्षा करता हुआ आया है हमारा अमंगल हरनेके लिये। हमें मंगलमय बनानेके लिये, हमें अपनी ओर खींचनेके लिये। यह बात ध्यानमें रखिये—जितना भी जगतका अधिक स्नेह मिलेगा आपको, जितना भी अधिक आदर मिलेगा उतना आप भगवान्से दूर होंगे। उनमें फँस जायँगे, भगवान्की विस्मृति होगी। ये मेरी चीज, ये मेरी और मेरी बढ़ती चली जा रही है जितना ममताके पदार्थोंका विस्तार होगा उतना हम भगवान्से हटेंगे। जितना जगतमें अधिक स्नेह, आदर प्राप्त होगा उतना हम गर्तमें गिरेंगे। मानना चाहिये जब कृपा करते हैं तब भगवान् इस प्रकारकी परिस्थिति भेजते हैं जिन परिस्थितियोंमें हम भगवान्में लग जाते हैं। उसका यह अर्थ नहीं कि अनुकूल परिस्थितिको हम अनुकूल न समझें। मानको समझें कि इस रूपमें हैं। भगवान् हमको योग्य समझकर हमको अपनी सेवाके लिये ये पदार्थ सौंप रहे हैं प्रबन्धक की हैसियतसे, एक सुन्दर मैनेजरके रूपमें, एक व्यवस्थापकके रूपमें अपनी चीज भगवान्को दे रहे हैं। अगर भगवान् ये चीज संसारको दें तो व्यवस्थापक, मैनेजरकी भाँति, भगवान्के सेवककी भाँति उस चीजका भगवान्की सेवाके लिये, भगवान्की आज्ञानुसार उपयोग करें और जब ये चीज हर लें तो भगवान्का मंगलमय विधान मानकर ये समझें कि भगवान् अब हमें अपने निकट बुला रहे हैं। ये बड़ा अच्छा।

एक बात याद रखनेकी है कि हमलोग जितने हैं ये असलमें भगवान्के भेजे हुए स्वांग हैं। स्वांग सबको भगवान्ने अलग-अलग पोशाक दी, अलग-अलग नाम दिये और अलग-अलग काम सौंपा। जो आदमी भगवान्के लिये, भगवान्की आज्ञानुसार अपना काम ठीक-ठिकानेसे करता और यहाँकी चीजोंको अपनी मानता नहीं भगवान्की मानता, यहाँके लाभको अपना लाभ मानता नहीं भगवान्का मानता, यहाँके सम्बन्धियोंको अपना सम्बन्धी मानता नहीं वो खेलके सम्बन्धी मानता। स्वांगके अनुसार खेलता। वह ईमानदार है और उसपर भगवान्की कृपा उतरती है और वह भगवान्को पाता है और यहाँ बेईमानी कर ली किसीने। स्वांग दिया कुछ, खेलने लगा कुछ तो उसने खेल बिगाड़ दिया। स्वांगकी चीज—अरे पोशाक दी, उसको भी मान ली, गहना पहननेको दिया वहाँ भी स्वांगमें उसको घर ले जाने लगा, स्वांगके सम्बन्धियोंसे राग-द्वेष करने लगा—ये बैरी, ये मित्र और इस नाटकमें होनेवाले लाभपर अपना स्वामित्व करने लगा—वह बेईमान। यहाँपर बड़ी सीधी बात है खेले स्वांगके अनुसार ही स्वधर्म है। जिसके जिम्मे भगवान्ने जो काम लगा दिया, उस कामको भगवान्का काम समझकर, भगवान्की सेवाके लिये ममता आसक्ति न करते हुए करें।

'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर' (गीता/३/९)

'कर्म समाचर'—कर्म तो करे ठीक ठीक, कर्म बिगाड़े नहीं। जिसके जिम्मे जो काम, उस कामको पूरा पूरा उतारे। लेकिन तदर्थ भगवान्की सेवाके लिये और मुक्तसंग आसक्तिसे छूटा हुआ तो कर्ममें आसक्ति नहीं और उसके फलमें आसक्ति नहीं। अभी सेठजी कह रहे थे अन्तिममें जब मैं यहाँ आया तो बोले—जगत्में किसीसे प्रेम न करो इसका अर्थ है—आसक्ति न करो, भगवान्के नाते सबमें प्रेम करना चाहिये पर आसक्ति किसीमें नहीं करनी चाहिये। आसक्ति! राग! ये बुरी चीज है तो जगत्में आसक्ति नहीं। जगत 'मुक्तसंग' संग कहते हैं आसक्तिको। जगत्के पदार्थोंमें आसक्ति नहीं, कर्ममें आसक्ति नहीं, कर्मफलमें आसक्ति नहीं बस भगवान्के लिये कर्म करना, भगवान्की सेवाके लिये कर्म करना और कर्मका फल क्या माँगे—सेवा और मिलती रहे। उसका फल कहीं सेवासे मुक्ति ये महाराज बड़ी भूलकी चीज होती है ये मुक्ति। ये मुक्तिके चक्करमें

जब पड़ जाता है आदमी तो सेवासे मुक्ति माँगने लगता है। भगवान् कहते हैं—अरे मुक्त करके ही तो तुम्हें सेवामें रखा अगर तुम बंधनमें रहते तो हमारी सेवा कैसे करते। तुमको सारे-सारे बँधनोंसे मुक्त किया, सारी गुलामीसे छुड़ाया और मेरी सेवामें रखा अब तुम सेवासे मुक्ति चाहते हो।

इसलिये सेवक लोग जो हैं वह मुक्ति नहीं चाहते। वो सेवा चाहते हैं तो भगवान्का सेवन करें और निरंतर ये चाहे कि सेवाका फल सेवाकी अधिक अधिक उपलब्धि। बोले—भगवान् प्रसन्न होकर सेवाका फल क्या दें? और सेवा बतायें, सेवाकी योग्यता और सेवाका अधिकार और सेवाका उत्साह ये बढ़ता रहे। ये होती है सेवककी कामना। सेवककी कामना मुक्तिकी नहीं होती। सेवक यदि मुक्ति चाहे तो सेवक नहीं और सेवक यदि बदलेमें पैसा चाहे तो सेवक नहीं। सेवक न चाहता है मुक्ति, न चाहता है भुक्ति। सेवकका काम मालिकसे माँगना। अगर माँगे, यानी माँगे तो क्या माँगे कि महाराज यदि आप मुझसे संतुष्ट हैं, यदि राजी हैं तो ये जो मेरी सेवा है ये सेवा नहीं है। मैं सेवा करने योग्य नहीं, आप सेवा मानते हैं ये आपका शील है। सेवक सेवाका अभिमान नहीं करता। वह कहता है स्वामीसे कि आप जो मेरी सेवाको सेवा मानते हैं इसमें आपका शील है, आपका स्वभाव है, आप बिना ही सेवा किये सेवा मान लेते हैं लेकिन यदि आप सेवा मानते हैं और फल देना चाहते हैं तो मुझे ये फल दें कि सेवाकी योग्यता, सेवाका अधिकार और सेवाका विस्तार ये मुझे अधिक से अधिक प्राप्त होता रहे।

धन मदान्धता

नलकूबर और मणिग्रीव—कुबेरके इन दोनों पुत्रोंको धनके मदमें मत्त देखकर देवर्षि नारदने धनमदके दोष बताये। उसके बाद उन्होंने धन मदान्ध नलकूबर और मणिग्रीवकी धनमद रूपी रोगकी चिकित्सा करना चाहा। कहते हैं कि अधिकांश लोग किसीमें कोई दोष देखते हैं और उस दोषको देखकर उसका तिरस्कार करते हैं अथवा दंड देते हैं, भली-बुरी सुनाते हैं। परन्तु दोष दूर कर देना चाहिये—ये दृष्टि बहुत कम लोगोंकी होती है। किसीके भी दोषको देखकर तिरस्कार कर देने और दंड देनेकी तो वृत्ति बहुत लोगोंमें आती है परन्तु दोष दूर करनेकी वृत्ति बहुत कम लोगोंमें आती है।

एकमात्र भगवत्भक्त ही ऐसे होते हैं, उनका ये स्वभाव होता है कि वे किसीके दोषकी ओर प्राय: देखते ही नहीं और किसीका दोष लेते नहीं हैं। वे स्वभावसे अदोषदर्शी होते हैं परन्तु यदि कभी किसीके सौभाग्यसे उसका दोष उन्हें दीख जाता है तो फिर उसका दोष मिट जाता है। वे भक्त लोग जो हैं उनकी दृष्टिमें किसीका दोष आनेपर वे दयार्द्र हो जाते हैं, द्वेष नहीं करते हैं। उसके प्रति दयार्द्र होकर चाहे शापके द्वारा, चाहे अनुग्रहके द्वारा जैसा रोग हो वैसी दवा करके उस दोषको नष्ट कर देते हैं।

जिसमें दोष दूर करनेकी शक्ति न हो वह अगर किसीमें दोष देखता है और दोष बताता है तो लाभ क्या है? उसमें उसकी अपनी हानि होती है, उसके अपने दोष बढ़ते हैं। दोषीका आप दोष बताइये तो इससे और भी उसको क्रोध होगा। और भी क्रोधित होकर फिर वह प्राणप्रणसे और अधिक-अधिक दोष करनेमें लगेगा।

इसलिये दोषीका केवल दोष बतला देना, उसे डाँट देना, दण्ड देना, भला-बुरा कहना—यह न तो दोष घटानेमें कारण होता है और न ही अपनेको कोई लाभ होता है। उसमें अपनी हानि होती है। दूसरेके दोष बताकर उसको शत्रु बना लेना यह बुद्धिमानीका कर्तव्य नहीं है। ये बड़ी सुन्दर मनोविज्ञानकी बात है कि दूसरेके दोषोंकी जब हम सूचना करते हैं तो उन दोषोंका हमारे मनमें मनन होता है और जिन चीजोंका अधिक मनन होता है वैसा ही आदमी बन जाता है। रात दिन चोरोंकी चर्चा करिये, ऐसा करते-करते आप चोरी करने लगेंगे। जो स्थान पापियोंको मिलता है वही स्थान फिर हमको मिलेगा। भागवतमें आया है—**'येन धर्मकृतस्थानं सूचनास्यपिक्त भवे।'** अधर्म करनेवालोंको जो स्थान मिलता है वही सूचना करनेवालोंको मिल जाता है। पाप करनेवाले मनुष्य जैसे नरक भोगते हैं उसी प्रकार उनके पापोंकी सूचना पाप करनेवालोंको भी नरक भोग करना पड़ता है। इसलिये भक्त लोग किसीका दोष देखते ही नहीं, न दोष किसीका कहते हैं, न दोषोंकी आलोचना करते हैं। दोषदर्शनसे दो हानि होती है—एक तो दोष दर्शन करनेसे दोष उसके बढ़ते हैं, घटते नहीं। अपने मनमें द्वेष आदि आते हैं और दूसरा अपने मनमें अगर दोषोंमें राग हो गया तो वैसे ही दोषी बन जायेंगे। नरकगामी हो जाते हैं।

इसलिये भक्त लोग जो हैं ये न तो दोष देखते हैं न गुण ही देखते हैं। **'पर स्वभाव कर्माणि नपि संशये न गर्गये'**—दूसरेके स्वभाव अथवा अच्छे-बुरे कार्यकी न तो वे निन्दा करते हैं न प्रशंसा करते हैं। अपना भगवान्‌के भजनमें लगे रहते हैं। भक्तको न दोष देखना चाहिये न गुण देखना चाहिये। ये भगवान्‌की आज्ञा है ऐसा करना चाहिये। वे इस आज्ञाको मान करके बस भगवच्चरणारविन्दकी स्मृतिमें ही रत रहते हैं। वे कभी किसीका भी दोष नहीं देखते और यदि कहीं

दोष किसीका उनके ध्यानमें आ जायेगा तो वे दोष उसका मिट जायेगा, विशुद्ध हो जायेगा।

परम भागवत श्रीनारदजी महाराजको नलकूबर और मणिग्रीवका दोष ध्यानमें आ गया। उनका उद्धार होना था इसलिये उन्होंने उनके दोषोंका नाश करनेका निश्चय किया। ये सिद्धान्त मान लेना चाहिये कि दोष नाश करनेकी अगर इनमें शक्ति न होती तो वे दोषोंको देखते ही नहीं। अच्छे पुरुष दूसरेके दोषोंका कथन करके अपनी जीभको कलंकित नहीं करते। किसीके दोषका कथन करना जीभको कलंकित करना है और मनमें उन पापोंको भरना है। संतलोग ये काम करते ही नहीं। वे न तो किसीके दोषोंको देखते हैं और न किसीके दोषोंका कभी कथन करते हैं। नारदजीके ध्यानमें जब ये आ गया तो इसका निवारण करना था। इसलिये उन्होंने उनको देखा। अब दवा होती है रोगके अनुसार। सब रोगोंकी एक दवा नहीं होती। सुचिकित्सक जो होते हैं वे रोगके अनुसार उसकी चिकित्सा करते हैं। ये मणिग्रीव और नलकूबरमें जो मदान्धता आयी—मद आया—ये मद केवल, केवल एक बातको लेकर था कि वे बहुत बड़े धनीके पुत्र हैं। धन-मद वश ही उनको ये मद आया। ये इसीसे अन्धे हुए। इनकी इस अन्धताको दूर करनेके लिये दवा है—धनमदको दूर कर देना और धनमद धन रहते दूर होगा नहीं। क्योंकि ये तो उस नशेमें चूर हो चुके हैं। चूर न हुए हों तो कह दें—भाई, नशेको मत पीना। अब इनके लिये एक ही उपाय है कि दरिद्रता जो है यही धनमदके निवारणकी सिद्ध औषधि है। जो धनके मदमें अन्धा होकर बुरा आचरण करनेमें लग जाता है वह यदि किसी कारणसे भगवतकृपासे दरिद्र हो जाय, धन उसका चला जाय तो उसका धन-मद-रोग मिट जाता है।

धन मदसे अन्धे होनेकी अपेक्षा दरिद्रताका अंजन आंजकर सुरमा लगाकर सारे भूलोंमें आत्म समदृष्टि प्राप्त कर लेना—ये बड़ा

कल्याणकारी है।

ये बात ठीक है कि दरिद्रता अच्छी चीज नही है पर धन और दारिद्य की दृष्टिसे अगर देखें तो दरिद्रके लिये भगवत प्राप्ति जितनी सुगम है उतनी धनीके लिये नहीं। धनहीनके पास ऐसे बहुतसे कारण स्वाभाविक नहीं हैं जो उसको भगवान्से अलग करनेवाले हों बल्कि स्वाभाविक अनुकूल कारण हैं और धनीके पास उसके प्रतिकूल कारण हैं। धनी—उसके पास धन है तो नाना प्रकारके भोजनके पदार्थ प्राप्त करके वह जीभकी आसक्तिको बढ़ाता रहता है पर जो दरिद्र है उसके पास वस्तु है ही नहीं, वह रूखा-सूखा खाकर अपना पेट पालता है। उसको जीभके स्वादपर उतनी आसक्ति नहीं हो सकती। धनी आदमी बहुत बढ़िया महलमें, बहुत सफेद, बहुत नरम बिछौनेपर सोकर आराम करता है, नौकर-चाकर सेवा करते हैं, पंखे डुलते हैं। वह विश्राममें ही व्यस्त रहता है। कैसे विश्राम मिले, कैसे शान्ति मिले, कैसे सुख मिले, आराम मिले। वह केवल आराममें ही रत रहता है इसलिये इसका मन अधिक आसक्त होता है आरामकी वस्तुओंमें। पर जिन लोगोंको पूरा खानेको नहीं, पहननेको नहीं, घर नहीं—वे आराम कहाँ खोजेंगे। वे तो विश्राम खोजें कि कहीं जगह मिल जाय तो रह जायँ। आराम खोजनेके लिये उनके पास मन नहीं रहेगा। वे समझेंगे कि कहीं अगर किसी महलके सामने पहुँच गये तो आराममें उलटे बाधा पहुँचेगी।

संत को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरिनाम।
जाको मुख देखे दुःख उपजत, ताको करनो भयो प्रणाम॥

संतोंको उसमें दुःखकी अनुभूति होती है। जो धन-मद-मत्त लोग होते हैं ये बड़े अभागी होते हैं क्योंकि इनके मनमें किसी दरिद्रकी ओर देखकर, दरवाजेके सामने आये हुए किसी भूखे-प्यासे थके हुए आदमीकी ओर इनकी दृष्टि जाती ही नहीं। इनको अपने आरामसे समय नहीं है। बेचारे कब सोचें, कब देखें कि किसी दूसरेकी क्या दशा है। दूसरेके दुःखका सुनना और सोचना भी इन लोगोंके लिये दुर्लभ हो जाता है। फिर ये कैसे अनुभव करें किसीके दुःखको। कहा है कि जबतक अपने शरीरमें काँटा नहीं चुभता तबतक काँटेसे क्या वेदना होती है इसका अनुभव नहीं होता। दुःखके बिना परदुःखका अनुभव नहीं होता। गरीबीके बिना गरीबके अभावका अनुभव नहीं होता।

दरिद्रता मनुष्यके हृदयको जितना परदुःखकातर बना देती है, धन गर्व ठीक उससे उल्टा उतना ही परहिंसापरायण, निष्ठुर, कठोर बना देती है। धनीके बगलमें अगर गरीबोंकी झोपड़ी होगी तो धनी उनको उजाड़ना ही चाहेगा।

शुकदेवजी कहते हैं कि दरिद्रता मानवताकी प्रकाशिका है। मानवताको प्रगट करनेवाली है। दरिद्रताके बिना हृदयका शोधन नहीं होता। दरिद्रता मनुष्यको मनुष्यके पदपर प्रतिष्ठित रखती है। जीवमें जो अभिमानका महल बनता है इस महलका लोहेका खम्भा अहंकार है। यह लोहेका खम्भा कब टूटता है जब इसपर कोई बिजली पड़े, वज्रपात हो तब। यह जो दारिद्य है ये वज्राघात है। लोहेका खम्भा टूटेगा नहीं बिना दारिद्रके। जब ये लोहेका खम्भा टूट जायेगा तब अभिमानका जो उच्च प्रासाद है वह ढह जायेगा। दरिद्र व्यक्ति यदि विद्वान भी होता है तो उसमें विद्याका मद नहीं होता क्योंकि उसको अपने काममें लगा रहना पड़ता है, आवश्यकताकी पूर्तिमें; वह कब मद दिखायेगा। विद्वान होकर भी वह धनीके पास चला जायेगा। मद नहीं रहेगा। दरिद्र व्यक्ति उच्च कुलमें जन्म धारण करके भी उच्चकुलका अभिमानी नहीं होता। दरिद्रता ऐसी बढ़िया चीज है कि वह सब प्रकारके मदोंसे मुक्त रखती है। मनुष्यको मद मनुष्यतासे गिरा

देते हैं।

जितने भी फकीर हुए हैं, जितने भी भगवान्‌को प्राप्त करनेवाले हुए हैं वह चाहे पहले राजा हुए हों—दरिद्रताको स्वीकार करना पड़ा। फकीरीके बिना नहीं मिलते। फकीरीमें जो मदमुक्त मानव—आत्मा होता है स्वराज्यके सिंहासनपर वही बैठ सकता है। वही जगतमें वास्तविक पूज्य हो सकता है। फिर उसके तप अपने आप होते हैं। धनी आदमी आरामसे सोता रहता है। वह कब तप करे? उसके लिये तप बनता ही नहीं पर दरिद्र जो है उसको शामको खानेको चाहिये। दिनभर काम करेगा तो मिलेगा। इसलिये दरिद्र अपने आप धूप सहता है, गर्मी सहता है, वर्षा सहता है, शीत सहता है। उसका तप अपने आप होता है। तप अभिमानका नाश करता है। इसलिये दरिद्रता ही अभिमानको दूर करके मनुष्यको निरभिमान करती है। तपस्वियोंका जो तप साध्य है, अभिमान-वर्जन रूप जो महाफल है यह गरीबोंको अनायास मिल जाता है। गरीबीमें ये भाव कर ले। गरीबीमें रोये नहीं। गरीब तपस्वी है, गरीब भागवत भक्त है, गरीब त्यागी फकीर है। उसे कुछ करना नहीं पड़ा इसलिये यह चिर तपस्वी है, चिर त्यागी है, नित्य त्यागी, नित्य तपस्वी, नित्य इन्द्रिय निगृहीत, नित्य मनोनिगृहीत है। इच्छा न होनेपर भी यह सदगुण उनमें अपने आप आ जाते हैं। नारदजीने मनमें सोचा कि दरिद्रताके समान इनकी दवा दूसरी नहीं है।

कहते हैं कि जो वासना है मनुष्यके मनमें—भोगवासना, कामना ये बड़ी पुरानी है। इससे मनुष्य किसी प्रकार भी निकल नहीं सकता। ऊपरसे छोड़ता है तब भी मनमें रहती है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(गीता/२/५९)

जितनी-जितनी भोगकी वस्तु सामने कम होती है उतना-उतना

निवृत्त होना सहज होता है। जिसके पास अनावश्यक बीसों प्रकारकी भोजन सामग्रियाँ हों उसका मन सभीमें आसक्त होगा और जिसने बीस चीजें देखी न हों केवल रोटी-दाल खाता हो उसको वे चीजें याद ही नहीं आयेंगी। स्वभावतः ही भोगका अभाव रहता है। दरिद्रोंके पास भोगका अभाव रहनेसे उनको बहुतसे क्लेश करके त्यागका अभ्यास नहीं करना पड़ता। त्याग अपने आप हो जाया करता है। भोग-वासना अपने आप उनकी निवृत्ति हुई रहती है। इन्द्रिय-संयम शिक्षाके लिये दरिद्रको अलगसे अभ्यास, वैराग्य नहीं करना पड़ता। धन-गर्वित व्यक्तियोंका जो विलास-वासना परिपूर्ण विषय भोग है और जो असंयत जीवन है इससे उनकी जो लोभी जीभ है उसके लिये वे लोग प्राणी-हिंसा करते हैं। जितने कसाई खाने बने, जितने जीवोंको मारनेवाले और कारखाने, मिले हैं—कपड़ेकी मिल, पेड़की मिल—ये सब कसाईखाने हैं। उनमें जीव बहुत मरते हैं। यह जो प्राणी हिंसा, दूसरेको दुःख पहुँचाना और दूसरोंको मार डालना यह काम मनुष्यके भोगोंके लिये है। जीभका भोग, अन्य भोग यह चीजें बिना धनके नहीं बनती।

दरिद्र इन बातोंसे अपने-आप दूर रहते हैं। उनके मनमें यदि कहीं कोई शौकीनी भावना आ भी जाय तो पैसा पास है नहीं, कहाँसे लायेंगे। इच्छा होनेपर भी उनको इन्द्रियोंका संयम बाध्य होकर रखना पड़ेगा और इन्द्रियोंका संयम रखनेकी इच्छा करने पर भी यदि धन पास है और बुरी संगति है तो वे उस चीजको ले लेते हैं। निष्पाप जीवन भी पापी बन जाता है इसलिये। नारदजीने सोचा कि भगवान् भी ऐसे ही कहते हैं।

भगवान् अनुग्रह करते हैं तब धन हरते हैं। भगवान्‌ने भागवतमें कहा कि जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ उसके धनको हरता हूँ। किसीको अगर मीठा विष मिले और खानेमें मीठा लगे पर काम करे

जहरका; उस विषको कोई हर ले तो वह अनुग्रह करता है या क्रूरता करता है? भगवान्ने कहा है कि जितने भी विषय हैं इन्द्रिय स्पर्शजन्य भोग—इनसे जो मिलने वाला सुख है वह राजस सुख है।

विषयेन्द्रिय संयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता/१८/३८)

जितने राजस सुख हैं ये भोगनेके समय तो मालूम होते हैं अमृतके समान। मीठे लगते हैं परन्तु परिणाममें ये जहरका कार्य करते हैं। ऐसे जो भोग हैं और जो भोग-सुख हैं जब भगवान् किसी पर दया करते हैं अधिक अपनाना चाहते हैं, अपने पास लेना चाहते हैं तो उन सुखोंको हरते हैं—'**यस्याहमनुगृहणामि हरिष्ये तद्धनं शनैः**' (श्रीमद्भा०/१०/८८/८)— भगवान्के अपने वाक्य हैं कि जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ उसके धनको हरता हूँ, उसकी जागतिक सफलताको नष्ट कर देता हूँ। जगत्में सफल मनुष्य जो है वे अहंकारी और अभिमानी होकर मदमत्त हो जाते हैं और फिर वे जो चाहे सो करने लगते हैं। बलिने देवताओंका हनन किया, देवताओंको मारा, देवताओंको निकाल दिया। इतना अच्छे स्वभावका होकर भी धन-मदमें ऐसा किया। भगवान्ने उसके धनका हरण किया तब उसकी आँख खुली। उसकी रानीने भी कहा, ब्रह्माजीने भी कहा, सबने कहा कि भगवान्ने बड़ी कृपा की। भगवान् जब कृपा करते हैं तो मनुष्यको दारिद्रय देते हैं। यह बड़ी सुन्दर बात कही कि भगवान्का अनुग्रह भोगी आदमीके मनमें ठहरता नहीं है। उसका मन तो सैकड़ों छिद्रोंवाला होता है। वह भोग रूपी छिद्र उसमें है उनमेंसे वह अनुग्रह नीचे गिरता है। लेकिन जिसको भोग- काम नहीं है उसीके पास निश्छिद्र (बिना छिद्रवाला) पात्र है। उसमें भगवान्का अनुग्रह दान ठहरता है। भगवान्की क्या? दुर्योधनपर कृपा नहीं थी। दुर्योधनके पास भगवान् गये थे समझानेके

लिये कि मान जाय, उसकी रक्षा हो जाय, वंशकी रक्षा हो, उसके धर्मकी रक्षा हो पर उसने स्वीकार नहीं की। सारी की सारी कृपा व्यर्थ चली गयी लेकिन पाण्डव दरिद्र थे। उनपर भगवान्की कृपाका विशेष प्रकाश हुआ। जहाँ दरिद्रता होती है उसकी पर्णकुटीमें भगवान्के लिये स्थान रहता है। बड़े महलमें कमरे बहुत होते हैं, उन कमरोंमें स्थान होता है विलासके लिये। भगवान्के लिये नहीं होता है। उन कमरोंमें कहीं-कहींपर भगवान्की मूर्ति भी होती है। वह सजावटके लिये होती है। जैसे और तस्वीर वैसे भगवान्की तस्वीर भी सजावटके लिये लगा ली। वहाँ भगवान् नहीं होते, विलास होता है।

बड़ी सुन्दर बात टीकाकार लिखते हैं कि दरिद्रताकी मूर्ति विदुर और उनका घर भगवान्के लिये अपना है। उस विदुरकी घासकी कुटियामें लक्ष्मीपति भगवान्ने जाकर भोजन किया। दुर्योधनके यहाँ निमंत्रण था और बड़ी तैयारी भी थी। भोग-सामग्रियाँ दुर्योधनके यहाँ बहुत बनी थी। लेकिन भगवान्ने दरिद्रकी कुटियापर जाकर भोजन चाहा। और, दीनातिदीन जिनके हमेशा उपवास ही चलता था ऐसा सुदामा विप्र—सैकड़ों गाँठें जिसके कपड़ेमें लगी हो इस प्रकारके मलिनको चिथड़ा पहने आया और द्वारिकानाथ, द्वारिकाधीशने उस दरिद्र ब्राह्मणके द्वारा लाये हुए गन्दे चिउड़ेको परम तृप्तिके साथ भगवानने खाये। आजतक धन-गर्वित व्यक्ति भगवान्की कृपाका अधिकारी हुआ? धनी हो जायेगा धन-गर्व नाश होनेपर। इस प्रकारका सौभाग्य केवल शबरीको मिला, सुदामाको मिला, विदुर-पत्नीको मिला, पांडवोंको मिला। वहाँ धन-गर्व नहीं था। पर धन-गर्व वालेके पास भगवान्ने जाकर कभी आजतक इस प्रकारकी कृपा नहीं की। यह इतिहासमें नहीं मिलता। इसलिये भक्तोंने प्रार्थना की कि हे दीनानाथ! हमको आप कब वैसा दीन बनायेंगे। जब हम आपकी

अयाचित करूणाका धन प्राप्त करके सुखी होंगे। जो दीन होते हैं उनको भगवान्‌के द्वारा बिना माँगी कृपा मिलती है और जो धन गर्वित होते हैं उनको माँगनेपर भी नहीं मिलती क्योंकि वो धनका गर्व ही दिखाते हैं, माँगते नहीं। इतने धनी हो गये हैं वे हाथ जोड़ते हैं? अपने धनका गर्व ही प्रगट करते हैं वहाँ पर। दैन्य नहीं आता उनमें।

प्रश्न यह उठता है कि जगत्‌में तो बहुत दरिद्र हैं। अधिकांश सब गरीब ही गरीब हैं। उन सबको तो भगवान् नहीं मिलते, क्या बात है? तब बोले—दरिद्र तो हैं पर उनमें दरिद्रताका गौरव नहीं है। दरिद्रताको अभाग्य माने बैठे हैं। दरिद्रताको अगर वे संतुष्ट होकर गौरव मान लेते, भोग्य-वस्तुकी अपेक्षा उसको अधिक महत्वकी वस्तु मानते, भोगियोंकी अपेक्षा अपनेको अधिक गौरवान्वित मानते तो भगवान्‌की कृपाका जितना साधन उनके पास है उतना धनियोंके पास नहीं है। पर भोग न होनेपर भी रात-दिन वे अन्तरमें दुःखी होते हुए धनियोंकी बराबरी करनेकी इच्छा रखते हैं।

दरिद्रतामें संतुष्ट रहकर दरिद्रताके गौरवसे गौरवान्वित होकर जो रहते हैं वे अति निर्मल निष्पाप जीवन हो जाते हैं। फिर उनके पास जगतकी कोई वासना नहीं आती। उनके पास भगवान् आते हैं। उनके इस दारिद्रयका पुरस्कार देनेके लिये भगवान् अपने आपको ही उन्हें दे देते हैं धनके बदलेमें। भगवान्‌की यदि चाह है तो उसको ये चाहना चाहिये कि अपने यहाँ सबकुछका नाश कर दे और उसमें गौरव बुद्धि करे तब भगवान् उसके पास आ जायेंगे। ऐसी बुद्धि होनी चाहिये। किसीने लिखा है कि बहुत जन्मोंके महान सौभाग्यसे भगवान्‌ने मुझे दरिद्रता देकर अपनाया है। जो धनके मदवाले हो जाते हैं उन्हें भगवान् कहाँ अपनाते हैं। वे धनको अपना करके धनसे अपने आपको बाँधे रहते हैं। भक्त कहता है कि बहुत जन्मोंके सौभाग्यवश भगवान्‌ने कृपा करके मुझे दरिद्रता देकर अपना लिया तो मेरी सारी उच्छृंखलता और

सारी पाप प्रवृत्ति निष्फल हो गयी। पापोंको और उच्छृखलताका काम करनेके लिये क्षेत्र नहीं मिला। इसलिये मैं पर-पीड़न, प्राणी-हिंसाके महापापसे मुक्त हो गया। दरिद्रता मेरी परम बान्धव हो गयी। अब महाराज रीझकर आप आ जाओ। इस प्रकार दरिद्रतामें गौरव-बुद्धि यदि हो जाय तो उसके पास इतने सुन्दर साधन हैं कि तत्काल भगवान उसे मिल जाते हैं। धनियोंको धनसे ध्यान हटाना पड़ता है लेकिन उसको कुछ नहीं हटाना पड़ता है।

धन-गर्वित व्यक्ति नाना प्रकारके विलास-व्यसनोंमें मस्त रहता है तो उसकी सम्पत्ति क्या है? कुछ भी नहीं। और, दरिद्र जो हैं ये अगर भगवानकी कृपासे गौरव बुद्धि कर ले तो दरिद्रता रूपी महान सम्पत्ति उसको प्राप्त हो गयी और इसका परिणाम होगा भगवान्‌का अनुग्रह दान। धन गर्वित व्यक्ति इसका अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिये जो भगवान्‌के प्रिय होते हैं, जो भगवान्‌को पाना चाहते हैं वे दो चीजोंसे बचते हैं। स्त्री और विषयासक्त पुरुष। इन दो का संग तो करे ही नहीं। उनकी मूर्ति या चित्र देखकर भी डर जाना चाहिये।

'आकारयापिदेव्यं स्त्रीणां विषयामपि'—स्त्री और विषयासक्त पुरुष इन दोनोंके आकारको देख करके डर जाना चाहिये। ये स्वरूपसे मिल जायँ तो बहुत बुरा। दरिद्र भगवान्‌का बड़ा कृपापात्र है क्योंकि उसको भगवान्‌ने धन देकर अपनेसे दूर नहीं किया। उसको भगवान्‌ने अपनानेका साधन दे दिया। यह धनाभाव उसके अन्दर बहुतसे अपने आप संयमकी वस्तुएँ ला देता है। इसीलिये नारदजीने ये उपाय ठीक सोचा।

एक और बात जो धनियों और गरीबोंमें भेद बताया गया है—भगवान्‌की अपार कृपासे दरिद्रोंके पास जो भोग-वासनाकी निवृत्तिका सुयोग है वह तो है ही, एक सुयोग और है कि दरिद्रोंको अनायास ही बुरा संगसे छुटकारा मिलता। बुरा संग जहाँ-जहाँ मिलता है वहाँ

वहाँ पर पैसे चाहिये। वे पैसेके अभावके कारण विलास वैभववाले लोगोंके पास जा नहीं सकते, बाहर रोक दिये जाते हैं। उनके क्लबोंमें नहीं जा सकते, उनकी आरामकी जगहोंपर नहीं जा सकते, वेश्यालयोंमें नहीं जा सकते, बुरे स्थानोंपर नहीं जा सकते। वे अपने आपमें ही रहते हैं।

दूसरी बात—धनी लोग सत्संगमें नहीं जा सकते। धनियोंका जो धन-गर्व है वह उन्हें रोकता है। तुलसीदासजीने रामायणमें बताया कि ये जो मानस-सरि है इसके पास लोग आते नहीं। उन्होंने कई विघ्न बताये। यह धन-मद बड़ा विघ्न है। यह उनके मनमें एक अपनी झूठी स्थिति पैदा कर देता है। कई लोगोंको नहीं होती है। कुछ धनी ऐसे होते हैं जिनमें यह धन-मद नहीं होता है। गरीबोंमें बैठते हैं। लेकिन अधिकांश धनी जो हैं वे देखेंगे कि हम उन लोगोंमें कैसे बैठें, इन लोगोंके साथ कैसे खड़े हों? वे ऐसे महात्माके पास भी नहीं जाना चाहते। कभी जाना पड़ा तो ऐसे महात्मासे कुछ लेंगे नहीं। इसलिये कि वे धनके मदको लेकर वहाँ जायेंगे यह दिखाने कि इतने बड़े आदमी इस महात्माको गौरवान्वित करने आये हैं। महात्मा भी समझेगा कि हम कितने बड़े महात्मा हैं हमारे पास तो बड़े बड़े आदमी आते हैं। बड़े आदमी आते हैं इसलिये ये महात्मा हैं। महात्माको गौरव देने जाते हैं, दिखलाने जाते हैं तो वहाँसे हम लेंगे क्या? महात्माओंको अपने गर्वसे पहले ही दबा लेंगे। महात्माओंको हम महिमा देने आये हैं फिर महात्मासे लेंगे क्या? महात्मा ही बड़ा मान लेंगे कि इतना बड़ा आदमी हमारे पास आया है। यह बड़ा सज्जन है, सज्जनताकी छाप भले ही पड़ जाय, उसका गौरव भले ही मान ले लेकिन उनसे कुछ लेकर नहीं जायेंगे।

गोविन्दचरणारविन्दमें जो भक्ति प्राप्त करानेवाला सत्संग है। यह जितना दरिद्रोंको सुलभ है उतना धनवानोंको सुलभ नहीं है। धन-

गर्वितोंको सुलभ नहीं है। फिर उनके पूजनमें बहुत साम्रगी चाहिये, आडम्बर चाहिये। दरिद्रोंका जो भगवत् पूजन होता है यह बड़ा सरल होता है, सीधा होता है। इनको सत्संग मिलता रहता है और यह धनवानोंको नहीं मिलता।

इस प्रकारसे सब तरहसे देखनेपर यह मालूम होता है कि धनका जो गर्व है यह मनुष्यको गिरानेवाला है और फिर किसी गरीबको धनीका संग मिल भी गया तो क्या करेगा? वहाँसे दोष लेकर आवेगा। अपनी छाप तो उनपर गिरती नहीं, उनके दोष धीरे-धीरे उसमें आ जायेंगे। वह बेचारा और गिर जायेगा।

साधु दो तरहके होते हैं। एक, जिनकी बुद्धिमें धनी और गरीबका कोई अन्तर नहीं होता। वे चाहे जहाँ चले जायँ। वे कुछ लेनेके लिये नहीं जाते हैं। वे केवल कृपा करनेके लिये जाते हैं।

दूसरा, वे सोचते हैं कि धनीके पास जाकरके हमारी इज्जत बढ़ जायेगी, धनियोंके साथ हमारी फोटो छपेगी। हम बड़े अधिकारियोंके साथ बैठेंगे, मिलेंगे। धनियोंके साथ हमारा मान होगा। ये बहुत गड़बड़ है।

जिनमें स्वाभाविक साधुता है, जो निर्लिप्त हैं वे भगवत् प्रेरणासे प्रारब्धवश कहीं भी चले जाते हैं। उनकी न कहीं आसक्ति होती है, न कहीं उनका द्वेष होता है। वे लोग सच्चे साधु हैं। और जो अपने भाव-भंगिमासे, कथा-वार्तासे, नाचने-गानेसे, कीर्तनके स्वरोंसे, नयी-नयी युक्तियोंसे धनियोंका मन हरना चाहते हैं, उसके बदलेमें वे उनसे आराम-विलास लेना चाहते हैं वे वास्तवमें साधु नहीं हैं।

साधु जो होते हैं वे अट्टालिकाओंमें वास नहीं करते, मधुकरी खाते हैं, कोपीन पहनते हैं, उनको जगत्‌में किसी प्रकारके भोगसे कोई मतलब नहीं होता। वे कहीं चले भी गये तो कोई आपत्ति नहीं है। साधुका दृष्टान्त गौड़ीय सम्प्रदायमें है।

रघुनाथदासजी राजपुत्र थे। उस जमानेमें उनके चालीस-पचास लाख रुपया सालकी जमींदारी थी उस जमानेमें। पर वे कितने दरिद्र होकर रहे कि जगन्नाथजीमें आकरके जगन्नाथजीके द्वारपर जो लोग भिक्षा माँगते थे उनके साथ रहकर भिक्षा माँगते थे। लोगोंने जान लिया कि यह तो रघुनाथदास हैं। बड़े आदमीका लड़का तो इन्हें अच्छी भीख देने लगे। उन्होंने देखा कि यह तो आफत आ गयी तो वहाँसे दूर चले गये। जहाँसे जगन्नाथजीके मंदिरसे जूठा आदि निकल करके नालियोंमें जो बहकर जाता उस जूठनमेंसे चावल बटोरकर, खाकर अपना पेट भरते। इतना इनका त्याग था। एक दिन महाप्रभु पहुँचे। उस समय ये एक पत्तेपर लिये खा रहे थे। उन्होंने देखा तो हाथसे छीन लिया। बोले—अकेले-अकेले खाते हो, मुझे नहीं देते?

रूपसनातनजी महान धनी थे। यह राजमंत्री थे। इन्होंने क्या किया? फिर ये कैसे रहे? वृक्षके नीचे रहे, कभी छतके नीचे नहीं रहे। उन्होंने नियम कर लिया था कि छतके नीचे नहीं रहेंगे। वृक्षके नीचे रहे। वृक्ष भी रोज बदला कि कहीं आसक्ति न हो जाय कि हमारा वृक्ष है। अपने पास केवल मिट्टीका करवा, कौपीन और शरीर रखा। कभी उपवास करते। कभी कुछ मिल जाता तो खा लेते।

एक एक वृक्ष तले एक दिन वास।
प्रभु चरण शयन करे कर उपवास॥

इन्होंने महाव्रतका अवलंबन करके लोगोंको यह दिखाया कि साधुका यह रूप होता है। जो लोक-संग्रहका इच्छुक है, धनाकांक्षी है, जो अति विद्याओंसे रिद्धि-सिद्धिको दिखाता है, नाना प्रकारसे चिकित्सा करता है वह साधु वेषधारी वास्तविक साधु नहीं है। साधुमें जहाँ भोग-विलास है, भोग-विलासकी इच्छा है, स्त्री-धनका संसर्ग है वहाँ पर साधुता नहीं है। इसलिये जो साधु सजकरके लोगोंके पास जाते हैं और रुपया इकट्ठा करते हैं वे साधु नहीं हैं। दरिद्र लोग जो

हैं उनके पास ऐसे साधु नहीं आते। वे उनके दु:संगसे वंचित रहते हैं। क्यों रहते हैं? क्योंकि वे साधु वहाँ जाते हैं जहाँ पैसा मिले। गरीबोंको ये साधु नहीं अपनाते। ऐसे साधुओंके पास, फकीरोंके लिये, त्यागियोंके लिये स्थान नहीं होता है। ऐसे जो साधु हैं वे तो जाते हैं उन्हींके पास जहाँ उनको कुछ मिलता है अथवा उन्हींको बुलाते हैं, उन्हींको रखते हैं। इसलिये जो दरिद्र हैं उनको अच्छा संग मिलता है और बुरा संग साधु रूपमें भी उनको नहीं मिलता। इसलिये वे भाग्यवान हैं।

नलकूबर और मणिग्रीवमें दोष था धन-मदान्धताका। इनके पास स्त्रियाँ थी, विलास था। ये हर प्रकारसे विलासमें डूबे हुए थे। नारदजीने सोचा कि अगर ये दरिद्र होते तो ये विलास कहाँसे आता। मदिरापानकी मतत्ता और स्त्री-विलास- वासना—ये धन मद मत्त होनेसे इनमें आयी है। इसलिये धनका दोष जबतक रहेगा तबतक इनका उद्धार नहीं होगा। दो बातके कारण नारदजी इनसे मिले। एक तो इनके जो पिताजी थे वे भगवान् शंकरके भक्त थे। इसलिये पिताका इनके प्रति अनुग्रह था और पिता चाहते थे कि ये लड़के सुधर जायँ। प्रथम, पिताकी सदिच्छा, दूसरी बात इनका कोई पूर्वका सौभाग्य था ऐसा जिससे नारदजी प्राप्त हुए नहीं तो नारदजी ऐसे लोगोंको कैसे प्राप्त हों? नारदजीने देखा कि भगवान्ने ही इनके पास मुझको भेजा है तो अब मैं इन धन मदान्ध भाइयोंके दोषोंके मूल कारणको जान गया कि धन मद इनका कारण है। अब रोगका निदान हो गया। रोग तो प्रत्यक्ष सामने दिखता है कि ये इतने मदान्ध हो गये कि मेरे सामने भी नंगे खड़े हैं और कुत्सित चेष्टा कर रहे हैं। अप्सरायें वैश्या थीं लेकिन वे अलग हो गयीं। वे धन मदान्ध नहीं थी, धनके द्वारा आयी थी लेकिन इन दोनोंने सोचा—ये भिखारी मेरा क्या कर लेगा? हमलोग तो

कुबेरके पुत्र हैं। सैकड़ों-सैकड़ों भिखारी हमारे दरवाजेपर पड़े रहते हैं। इसलिये इस सरीखे भिखारीके सामने लज्जा क्या? भिखारी आदमी थोड़े ही होते हैं। इनका भय क्या? यह सब तो पत्थरकी भाँति पड़े हैं। इस प्रकार उन्होंने धन-मदान्धताके कारण नारदजीकी अवज्ञा की, अनादर किया लेकिन देवर्षि नारद गुस्सा नहीं हुए। गुस्सा होते तो इतनी बात सोचते कैसे? गुस्सेमें आदमी सोचता कहाँ है, मारता है या मरता है, गाली बकता है।

नारदजीने विवेक-विचारपूर्वक सोचा निश्किंचन, निष्कपट, निरंतर हरिगुणगानमें रत रहते हैं। इन्होंने उनको देखकरके अपनेको कृपाके वश पाया। इनका हृदय कृपासे विगलित हो गया और इसीलिये इन्होंने ये चिन्ता की कि कैसे इनका उद्धार हो। इसलिये उन्होंने सोचा कि दवा वैसी होनी चाहिये जैसा रोग हो। कुछ दवा ऐसी होती है जो लम्बे समयतक दी जाती है तब काम होता है। रोग ऐसा होता है कि जड़ पकड़ लेता है तब लम्बे कालतक दवा खाये बिना रोग नष्ट नहीं होता।

नलकूबर और मणिग्रीवकी जो धन-मदान्धता है यह एक सीमा तक पहुँच गयी है। इनकी दरिद्रता भी सीमा तक पहुँच जानी चाहिये। इन्होंने सोचा कि जगत्‌में जितने भी चराचर जीव हैं उनमें जो वृक्ष हैं ये सबकी अपेक्षा दरिद्र हैं, कृपण हैं, असहाय हैं। भूख-प्यास मिटानेके लिये भी ये कहीं आ-जा नहीं सकते। अपने आप कहीं प्यास मिट गयी तो मिट गयी। अपने आप छाया आ गयी तो आ गयी। इनके पास भूख-प्यास निवृत्तिके लिये कोई उपाय नहीं है। जमीनमें अगर रस है तो इनकी जड़में आ गया, इन्होंने खींच लिया। अगर जमीनमें रस नहीं है तो यह जलकी याचना करके प्यास बुझा लें ये शक्ति इनमें नहीं है। इनकी शाखा-पल्लवोंको अगर कोई काट लेते हैं तो बेचारे रोक नहीं सकते। दु:ख-भोग करते हैं। प्रतिकार नहीं

कर सकते। इनके फलोंसे लोग पेट भरते हैं, जीभको तृप्त करते हैं। किंतु ये उन अपने फलोंका भी कोई स्वाद नहीं ले सकते। अपने ही फल हैं, अपनेसे ही निकले हैं। ये स्वयं उनका स्वाद नहीं ले सकते। वृक्षके समान दरिद्र जगत्‌में कोई नहीं।

नलकूबर और मणिग्रीवकी धनान्धता जिस परिणाममें आगे बढ़ गयी है उसी परिणाममें वृक्षका जो दारिद्र्य है यह ही इनके स्वभावका संशोधन करनेमें समर्थ है। जिनका अभ्यास बहुत बिगड़ जाता है, आदत बहुत बिगड़ जाती है तो जिन बिगड़े हुए लोगोंके पास अगर धन भी न रहे तब भी उसकी आदत छूटती नहीं। वह भीख माँगकरके भी अपनी आदतको चलाता है। शराब पीनेवाला, अफीम खानेवाला, झूठ बोल करके भी भीख माँग लेता है, और शराब खरीदकर पी लेता है। माँगकर खरीदनेकी भी जिसमें शक्ति न रहे दरिद्रता ऐसी होनी चाहिये नहीं तो रोग मिटेगा नहीं। इनका जो कुअभ्यास है, बुरी आदत है उसको मिटानेके लिये स्वयं समर्थ न हो सकें तो यह करनेके लिये इनको वृक्षत्व दिया गया। यह पेड़ हो जायेंगे तो किसीसे माँग नहीं सकेंगे। नारदजीने इन्हें एक बात और दी कि यह बात इनको वृक्षावस्थामें भी याद रहे। यदि अपराधको आदमी भूल जाता है कि मैंने क्या भूल की तो फिर अपराध करेगा। इसलिये दंडभोग करते समय अपराधीको अपना अपराध याद रहे तो बार-बार पछताकर निश्चय करता है कि वह ऐसा अपराध नहीं करेगा। इसलिये नलकूबर और मणिग्रीवके धनान्धताका अपराध दूर करनेके लिये इनको वृक्षत्व देना चाहा। उसके साथ-साथ यह स्मृति भी दे दी कि वृक्ष बने हुए भी तुम याद रखोगे इस बातको कि इस कारणसे तुम वृक्ष बने हो तो फिर अगले जन्ममें धनान्धता नहीं होगी। वे उनको कीड़े बना सकते थे, पतंग बना सकते थे। चींटी बना सकत थे पर वहाँ पर उनका कुअभ्यास जारी रहता इसलिये नारदजीने इनको

वृक्षत्वका शाप दिया।

भगवान्‌की यह लीला उनके मनमें पहलेसे ही प्रकट हो गयी थी। नारदजी वहीं लीला गाते हुए आ रहे थे। इनको देखा कि ऐसे धन मदान्ध हैं तो लीला इन्हींपर हो, इस लीलाके यही पात्र बनें। महात्माओंके मनमें लीलाकी सुधा नदी बहती रहती है। वे सुख-दु:ख और दंड-अनुग्रह भी उसी लीलाके अनुरूप ही किया करते हैं। भगवान्‌की लीलाके सिवाय उनके मनमें सुख-दु:खादिका स्पर्श भी नहीं होता। इसलिये इनकी धनान्धता दूर करनेके लिये उनको शाप देनेपर प्रवृत्त हुए। उनके चित्तभूमिमें जो लीला चल रही थी उस समय उसी भावसे भावित होकर इन्होंने कहा कि तुम दोनों भाई वृक्ष बन जाओ और तुम्हारे मनमें जो धनान्धताका दोष है वह भी याद रहे।

दण्ड तो दे दिया लेकिन भगवान्‌के जो भक्त हैं वे किसीको दण्ड देकर रुक नहीं जाते। दंड देकर यदि भगवान्‌में लगाया नहीं, उसके हृदयका शोधन करके भगवान्‌का भजन करनेवाला नहीं बनाया तो दंडका औचित्य ही क्या? खेती करनेवाले लोग केवल हल चलाकर नहीं रह जाते। उसके बाद उसमें बीज भी डालते हैं, उसको निराते भी हैं। बहिर्मुखी जीवोंके कठिन हृदयमें केवल हल चला दिया, भूमि खोद दी अर्थात् दंड दे दिया इससे काम नहीं चलता है। उसमें बीज डालना है, पालन करना है, फलोत्पादन करना है। इन्होंने कहा कि देवताओंके एक सौ वर्षतक तुम यहाँ इस योनिमें रहोगे फिर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी नित्य लीला भूमिको जब प्रगट करेंगे उस समय वे तुमलोगोंके पास आयेंगे।

अपने चरण-स्पर्श करावेंगे। तब तुम्हारा वृक्षपना दूर होगा। तुमको देव-देहकी प्राप्ति होगी। फिर तुमको धनाभिमान नहीं होगा। तुम्हारे वृक्षत्व मिटनेके साथ ही देवदेहकी प्राप्ति होगी और उसके साथ ही भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारी प्रीति हो जायेगी। इस प्रकार हल चलाया,

बीज वपन किया और उसका फल भी दे दिया। ऐसा कहकर नारदजी अपने वीणा यन्त्रपर फिर स्वर भरते हुए हरिगुणगान करते हुए अपने आश्रमकी तरफ चले गये। नलकूबर और मणिग्रीव उसी समय वृक्षत्वको प्राप्त होकर गोकुलमें आ गये।

शिवजी महाराजने बताया कि नारदजीको गुस्सा नहीं आया था। उनकी धन मदान्धताको देखकर शापके बहाने उन्होंने उनपर कृपा की। भक्तोंके मनमें किसी प्रकारका जागतिक भाव स्पर्श नहीं करता। यह तो भगवान्‌के नाम, रूप, गुण लीलामें ही नित्य बहा करते हैं। नारदजीने दण्ड नहीं दिया बल्कि परम अनुग्रह किया। शोक, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, काम, हिंसा, अशान्ति—यह सब जो भगवान्‌से विमुख हैं उन्हींके साथ रहते हैं। जो गोविन्द चरणमें आ गये हैं उनके पास ये शत्रु नहीं आते। नारदजी ऐसे हैं। उन्होंने कृपा करके नलकूबर और मणिग्रीवको श्राप दिया, उनका वृक्ष जन्म हुआ जो देवजन्मसे भी परम श्रेष्ठ, देवर्षिके अनुग्रहसे महासौभाग्य प्राप्त करके इतने वर्ष तक निश्चिन्त होकर व्रजमें रहे। इतने वर्ष तक यह सौभाग्य मिला। इसके बाद भगवान्‌का दर्शन, भगवान्‌की संन्निधि प्राप्त हुई। यह देवर्षिका अनुग्रह था। देवर्षिकी दया थी न कि उनका शाप, दण्ड या क्रोध था।

❖❖❖

धन-दौलत, अधिकार-मानसे

धन-दौलत, अधिकार-मानसे होता कोई नहीं महान।
पर-दुख सुखी, दुखी पर-सुखमें जो, वह है पापोंकी खान॥
पर-सुख-साधनके निमित्त जो निज सुख कर देता बलिदान।
वह अमूल्य आभूषण जगका, वही जगतमें मनुज महान॥
अपना स्वार्थ साधनेको जो करता औरोंका नुकसान।
वह मानव जगका कलंक है, मानवताका शत्रु महान॥
जो स्वार्थी नर साधु-संत सज ठगता है, धोखा देता।
'बगुला भगत' नीच वह धर्म-जगत्‌का गौरव हर लेता॥
पढ़-लिख, जो उपाधि धारणकर, पर-सुख हरता साहंकार।
पढ़े-लिखे हिंसक उस पशु-मानवको बार-बार धिक्कार॥

(पद रत्नाकर/पदसं०१५०१)

हमारा पतन कैसे रुके?

सभी मनुष्य शान्ति चाहते हैं, सभी सुख चाहते हैं। पर जब अपने जीवनकी ओर आदमी देखता है, अपनी परिस्थितिपर विचार करता है, तो अन्दरसे ठीक-ठीक यही दृश्य देखनेको मिलता है मानो आग लगी हुई है, सब झुलस रहे हैं, भले ही कोई ऊपरसे बहुत सुखी, बहुत सम्पन्न, बहुत वैभव, बहुत अधिकारयुक्त प्रतीत हो, परन्तु जिसके हृदयमें शान्तिसुधाका समुद्र लहरा रहा हो ऐसा कोई बिरला भले ही मिले, नहीं मिलता। बहुत लोगोंसे बात होती है अपने जीवनका तो अनुभव है ही।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजाल समावृताः॥

× × × × ×

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः॥

नाना प्रकारकी चिंताओंसे संकुल हमारा जीवन जा रहा है जलता हुआ। तुलसीदासजी महाराजने बड़ी सुन्दर एक बात कही—

जगजाँचिय कोउ न जाँचिय जो जिय जाँचिय जानकि जानहि रे।
जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाय जो जारत जोर जहाँ नहिं रे॥

कहते हैं कि जगत्‌में किसीको जाँचो मत—‘**जगजाँचिय कोउ न**’ और ‘**जाँचिय जो**’ अगर जाँचना हो तो ‘**जाँचिय जानकि जानहि रे**’ जानकिनाथ भगवान् राघवेन्द्रको भगवान्‌को जाँचो, तो क्या होगा? ‘जेहि जाँचत जाँचकता जरि जाय जो जारत जोर जहाँ नहिं रे’—जो सारे जहानको, सारे जगत्‌को जबरदस्ती जला रहा है, जिसके मारे सब जल रहे हैं, वो जलानेवाला कौन है? वो है जाँचकता—विषयकामना, भोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा—ये जाँचकता जल जाती है उनको

जाँचनेसे—जबतक मनुष्यके जीवनमें लक्ष्य भोग है तबतक वो चाहे कितनी ही ऊँची स्थितिमें पहुँच जाय विद्यामें, बुद्धिमें, अधिकारमें, पदमें, साम्राज्यमें, वैभवमें, कीर्तिमें, यशमें—यही तो सब बड़ी चीजें हमलोग मानते हैं। कहीं पहुँच जायँ, जबतक भोग कामना है, भोग जीवनका लक्ष्य है तबतक चित्त जलता रहेगा, अशान्त रहेगा, कोई इसे स्वीकार करे या न करे। ये सबका अनुभव है। बरसोंसे अबतक मुझे जितने सज्जन यहाँपर मिले और जिन-जिनसे बात हुई, बहुत बड़े आदमी भी मुझे एक भी ऐसा नहीं मिला जो ये कहता हो मैं सुखी हूँ मुझे चिन्ता नहीं है। मनुष्यका जीवन केवल भौतिकतासे तृप्त नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। उसको आध्यात्मिकताकी आवश्यकता होती है। आजका यूरोप विज्ञानकी बड़ी उन्नति उसने की, अमेरिकाने, रसियाने। चन्द्रलोकपर जानेकी चर्चा हो रही है—सब ठीक है। विज्ञानका उन्नत होना—ये मानवके लिये बड़े गौरवकी चीज और इसका आदर होना चाहिये परन्तु ये विज्ञान उस भगवत् ज्ञानके बिना क्या चित्तको शान्ति दे सकेगा? क्या ये नवीन विज्ञानका आविष्कार करनेवाले देश हृदयमें शान्त हैं? क्या वे सुखको अनुभव करते हैं? क्या उनको भोग-विभीषिका नहीं लगी हुई है? क्या उनका चित्त शान्त हो गया? ये सब कहकर विज्ञानका निरादर नहीं करना चाहता। विज्ञानका स्थान है और बहुत ऊँचा स्थान है पर विज्ञान यदि मानवकी भोगेच्छाके सम्पादनमें ही लगा रहा तो विज्ञान आसुरी विज्ञान होगा। उस विज्ञानका फल होगा—चिन्ता, भय, शोक, विनाश और अन्तमें नरक। मनुष्यको अपने जीवनमें भौतिक उन्नतिकी आवश्यकता है। एक बार राममनोहर लोहिया मुझसे मिले। किसी जमानेमें मेरे विद्यार्थी रह चुके हैं। उन्होंने कहा कि भाईजी और सब बात तो ठीक पर ऋषियोंने भौतिकतापर ध्यान नहीं दिया। इतनी उन्होंने गलती की तब उनको मैंने बतलाया कि भौतिकतापर ध्यान नहीं दिया, बहुत ध्यान

दिया। हमारे यहाँ जो पुरुषार्थ चतुष्टय है इसमें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चार प्रकारका समन्वय है। अर्थ है और इसमें काम भी है। पर अर्थ और काम धर्मके द्वारा नियन्त्रित हैं और अर्थ और कामका लक्ष्य मोक्ष है। मोक्षके लिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित अर्थ और कामका सम्पादन और भोग। ये मनुष्यके लिये विहित है यथायोग्य उसे करना चाहिये। पर धर्म और मोक्ष दोनोंका बहिष्कार करके, इन दोनोंको जीवनमेंसे निकाल करके अर्थ कामपरायण जब मनुष्य बन जाता है तो गीताकी भाषामें उसकी संज्ञा असुर होती है—'कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिता:'—कामोपभोगपरायणता ये आसुरी मानवका जीवनका सिद्धान्त होता है। किसी प्रकारसे भी अच्छी या बुरी किसी भी साधनाके द्वारा काम बनना चाहिये। गाँधीजी कहा करते थे बड़ी सुन्दर एक बात कि साध्य अच्छा हो और साधन बुरा हो तो साध्यका अच्छापन रहेगा नहीं और यदि साधन अच्छा हो तो साध्य अपने आप अच्छा हो जायेगा। बड़ी सुन्दर बात जीवनमें जब भोगपरायणता होती है तो वह साधन जीवनका हो जाता है कि किसी प्रकारसे भी भोग मिले, किसी प्रकारसे भी।

आजके हमलोगोंमें कोई बाहरसे खराबी नहीं आयी। हमलोग आज नीचे उतर रहे हैं, स्तर हमारा नीचे हो रहा है नैतिक—इसका मतलब क्या है? हमारा जीवन अधिक से अधिक भोगपरायण होता चला जा रहा है। बोले—जीवनके स्तरको ऊँचा उठाओ। आजकल कहते हैं स्टैण्डर्ड ऊँचा करो। रहनेका स्तर ऊँचा उठाओ। कहीं अंगोछा बाँधकर चला जाय गंगा नहाने तो सर नीचा और गुसलखानेमें पखानेके पास ही उस नाबदानमें नंगा होके बैठ जाय, नहाले तो स्तर ऊँचा। जूता न पहनकर खा ले तो सर नीचा और जूता पहनकर टेबुलपर रखकर खा ले—आजकल एक चलन है 'बफ'। मुझे पता था नहीं, हमारे यहाँ कलक्टर रहे उनके फेयरवेल पार्टी थी। टाउनहालमें उनका प्रबन्ध

रहा। पार्टी देनेवालोंमें एक मैं भी था। मेरा नाम भी था तो मेरे मित्र रहे कलक्टर बड़े अच्छे आदमी थे डी०वी० सिंह। उस दिन बारिश हो गयी। बाहर इन्तजाम था वो रहा नहीं अन्दर हालमें ले गये। आदमी ज्यादा रहे। हमारे यहाँ एक बड़े अच्छे मित्र हैं—मौलाना जायद अली। मैं उनसे पूछने लगा कि अब कैसे होगा? उन्होंने कहा—आप सोलहवीं शताब्दीके आदमी हैं। आपको क्या पता इन बातोंका। उन्होंने कहा—देखें! ये बफ चली ही थी, नई थी। अब तो लोग बहुत जान गये। अब तो हमारे समाजमें भी शायद आ गयी है। कहते हैं, मुझे पता नहीं। टेबुलोंपर सामान उनका सजा दिया गया। कुछ काँटे आदि रख दिये गये, चम्मच रख दी गयी और सब घूमते हुए खाने लगे। जिसके मनमें जो आया वो लिया। इससे लिया उससे लिया। किसीने एकबार ही ले लिया, किसीने बार-बार लिया। जैसे पशु चरते हैं न। जहाँ मनमें आया मुँह मार दिया। मैं आक्षेप नहीं करता। जो कुछ मेरे मनमें आया, मैंने देखा मुझे ऐसा लगा ये स्तर ऊँचा। अच्छी तरहसे कपड़े पहन लें स्तर नीचा और अंगोंको न ढँके स्तर ऊँचा। ये है परिभाषा।

ऊँचे स्तरके बड़े लोगोंकी—खर्च बढ़ जाय और उस खर्चकी पूर्तिके लिये फिर भले ही चोरी करे। बोले—क्या करें, खर्च बढ़ गया है। इसके बिना काम चलता नहीं। ये कपड़ा चाहिये ही, विवाहमें इतना लगाना चाहिये ही। अमुक प्रकारकी सजावट होनी चाहिये। अब तो 'ही' है—चाहिये ही। अब आवे कहाँसे? भगवान्‌ने कहा गीतामें—'अन्यायेनार्थ संचयान' 'कामोपभोगपरमा' जो काम भोगपरायण होते हैं वो मजबूर होते हैं। अन्यायके द्वारा अर्थ संचय करनेके लिये दूसरा उपाय उन्हें सूझता नहीं। एक करने लगा, दो करने लगे, चार करने लगे तब तो समाजमें हो जाता है आदर्श। क्षमा कीजियेगा आप! एक कड़ी बात है जिस समाजमें, जिस देशमें, जिस

राष्ट्रमें, जिस विश्वमें चोर पूजा होती है वह समाज, वह राष्ट्र चोर बन जाता है। क्यों बनता है? मैंने देखा है कि अपने किसी प्रकारसे भी पैसा आना चाहिये। अब मैंने ठगी की, चोरी की, लोगोंको धोखा दिया—सबकुछ किया पर पैसा हो गया। जब पैसा हो गया तो समाजके सब लोग मुझे बड़ा आदमी मानने लगे, मेरी पूजा होने लगी, मैं समाजका सम्मान्य नेता हो गया। सब लोगोंने मुझको बड़ा कहा, बुद्धिमान कहा—देखो न कैसे बन गये? अपने ही हाथों निर्माण किया अपने जीवनका इन्होंने। दूसरे लोग समझेंगे कि भाई ऐसा अपने भी बनें। पैसा भी आया और पूजा भी मिली। चोरी तो समाज जब देखता तो चोरी पर लानत देता। चोरीको बुरा कहता पर चोर को तो कोई बुरा नहीं कहता। कहते हैं ये बड़ा अच्छा आदमी है। बड़ा होशियार है, बड़ा लायक, बड़ा सावधान, बड़ा निपुण। निपुण भी कहलाये, नेतृत्व भी प्राप्त हुआ, पूजा भी हुई—ऐसा काम कोई क्यों न करे? समाजमें चोर पूजा जहाँ आरम्भ हुई। आजका समाज चोर-पूजा भला। क्षमा कीजियेगा आपलोग मैं देहातका रहनेवाला आदमी ऐसे ही बोल जाता हूँ मुझे शहरोंका पता नहीं।

दूसरी चीज, मैं समाजके स्तरकी बात करता हूँ आपसे। आजके जगत्में सिनेमा—ये बोलते हुए चित्र ये माडर्न वर्ल्डकी आवश्यक वस्तु है। ये तो गाँवमें होना चाहिये, हमारे सरकारकी स्कीममें भी, योजनामें भी कि गाँव-गाँवमें लोगोंके मनोरंजनके लिये सिनेमा होना आवश्यक है। मेरे पास एक फाइल है उसमें पढ़े लिखे विद्यार्थियोंके, प्रोफेसरोंके स्टेटमेंट हैं। एक नहीं सैकड़ों—सिनेमासे किस प्रकार उनका पतन हुआ है, किस प्रकार वे गिरे हैं, किस प्रकारसे उनमें बुराइयाँ आयी हैं और कैसे वे तबाह हुए हैं—इसका वर्णन है। पर उसके बिना काम नहीं चलता। आज कहीं कोई सिनेमाकी एक्ट्रेस कहीं जाय वहाँ

स्टेशनोंपर भीड़ लग जाती है, डिब्बोंके काँच टूट जाते हैं, दंगे हो जाते हैं? कौनसे शुकदेव मुनि जा रहे हैं? व्यास भगवान् जा रहे हैं? जिसे नाचना-गाना आता है वो एक लड़की जा रही है। क्या है इसमें? माना कला है पर जो कला समाजके हितको न देखे वो कला 'काल' बन जाती है वो 'ल'का आकार 'क' में आ जाता है। जैसे हमारे यहाँ कहते हैं पंडित लोग 'साक्षरा'को उलटा पढ़ो तो क्या पढ़ेंगे 'राक्षसा'। जहाँ पढ़ा-लिखा समाज जो अपनेको विद्वान मानता है, शिक्षित मानता है, वह समाज जब उलटा चलने लगे तो क्या होगा समाजमें—राक्षसवाद फैलेगा, असुरवाद फैलेगा—ये ऊँचा स्तर।

असलमें मेरा मतलब कहनेका इतना ही है इन सब बातोंसे है कि समाजके या व्यक्तिके या राष्ट्रके सामने केवल भौतिक जगत है केवल भोग है वहाँ शान्ति सुख तो है नहीं। जीवन भर अशान्ति रहेगी, निश्चित रहेगी।

'चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः' मृत्युके अन्तिम क्षण तक चित्त चिन्ताओंसे घिरा रहेगा। लोग चाहे उसको पूजें पर उसके मनपर जो कुछ बीतेगा वही जानता है। तीन चीज मिलेगी, भोगासक्तको तीन चीज मिलेगी—चिन्ता, निराशा, पाप। जगत्में कहीं आशा पूर्ण नहीं होती। जितने भी हम दुःखी होते हैं आशाको लेकर दूसरेसे, प्राणीसे, पदार्थसे, परिस्थितिसे ऐसा हो तो सुखी हों। बस सुखको हमने पराये हाथ बेच दिया। इसके पीछे सही अगर वह प्राणी है—मन दूसरा, समझ दूसरी, आवश्यकता दूसरी वह क्यों करेगा हमारे मनके अनुकूल। आशा पूर्ण क्यों करेगा।

भगवान्ने गीतामें अर्जुनको आज्ञा दी, कर्मका विरोध नहीं किया, समर्थन किया, युद्ध करनेकी आज्ञा दी पर कहा—

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यास्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः॥

(गीता/३/३०)

कहा आशा छोड़कर निराशी, ममता छोड़कर और कामनाकी बुखार उतारकर 'विगतज्वर'—कामनाकी बुखार उतारकर युद्ध करो। जो कुछ कर्म करो आशा छोड़कर, ममता छोड़कर—ये आध्यात्मिकतामें स्थित होकर—अध्यात्मचेतसा—आध्यात्मिकतामें स्थित होकर, भगवत्पूजाके लिये भोगोंका सम्पादन सेवन। ये आवश्यक बात है कि महर्षियोंने उपेक्षा नहीं की इनकी पर संखियेमेंसे जहर निकालकर उसे उपयोगी अमृत बना दिया। मनुष्यके जीवनमें आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। ये सबसे पहली बात। जबतक अध्यात्म जीवनमें नहीं आवेगा और अध्यात्म केवल कहनेका नहीं।

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसरि बात।
कौड़िहु कारण लोभ लगि, करहिं विप्र गुरु घात॥

ये संसार बना ही नहीं, है ही नहीं, अजातवाद, संसार बना ही नहीं। कुछ है ही नहीं, सब माया। सब माया पर जहाँ पैसेका काम आया वहाँ माया-वाया कुछ नहीं। वहाँ तो पैसा ही भगवान् है

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसरि बात।
कौड़िहु कारण लोभ लगि, करहिं विप्र गुरु घात॥

कहनेकी आध्यात्मिकता नहीं, आध्यात्मिकता जीवनमें आवे। इसकी बड़ी आवश्यकता है। ये याद रखनेकी चीज है—ऋषियोंकी वाणी—जबतक मानव जीवनमें आध्यात्मिकता नहीं आवेगी तबतक किसी प्रकारकी भी ऊँची से ऊँची साम्पत्तिक स्थितिमें भी सुख शान्तिके दर्शन नहीं होंगे। ये सिद्धान्त निश्चित। भगवान्ने कहा—**'अनित्यमसुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्'**—तुम जिस लोकमें हो। इसमें दो चीज है—ये अनित्य हैं और असुख हैं। सुख चाहते हो तो 'माम् भजस्व'। अब इसके आध्यात्मिकताके कई साधन हैं। फिर हो जीवनमें लक्ष्य। हमारे जीवनका लक्ष्य क्या है? ये पहलेसे तय करें। बोले—भाई स्टेशनपर गये, बुकिंग आफिसके सामने जाके खड़े हो गये। बोलो कहाँका टिकट दें? पैसा देकरके तो भटकनेके सिवा कुछ हाथ नहीं लगेगा। बोले—कहाँ जाना है पहले इसको तय करो। उसके बाद कौन-सा रास्ता सुगम है ये देखो और फिर यात्रा शुरू करो। मानव जीवनमें सबसे बड़ी बात ये है उसके जीवनका लक्ष्य अध्यात्म है। उसके जीवनका लक्ष्य भौतिक पदार्थ नहीं। बड़ा अन्तर है। जहाँ कर्तव्यके स्थानपर अधिकार आया और जहाँ त्यागके स्थानपर अर्थ आया वहाँ दुर्दशा समाजकी आज है। हमारे मनकी वही दशा होती है। सबको अर्थ चाहिये, कैसे भी मिले। साधन बिगड़ा—जीवन बिगड़ा।

जहाँ कहीं बुराईमें आदमीने पैर रखा—बुढ़िया मर गयी, रोने लगा एक घरका आदमी। बोले—रोते क्यों हो? इसलिये रोते हैं कि बुढ़िया तो मर गयी, बुढ़ियाके मरनेकी कोई फिक्र नहीं, पर मौत घर जो देख गयी। आज बुढ़िया मरी, कल जवान मरेगा। ये घर झाँक गयी है मौत। इसी प्रकारसे जहाँ मनुष्यका स्खलन हुआ, एक बार मर्यादा जहाँ टूटी, जहाँ बुराईको एक बार भी किसी भी हेतुसे अपनाया वहाँ बुराई कहेगी कि तुमने तो अपना ही लिया और लोग भी तो करते हैं ना। सभी ऐसा करते हैं हम क्यों न करें? क्या इसमें पाप है? होता तो सब क्यों करते? इस प्रकार बुराई जीवनमें आकर जीवनका स्वरूप बन जाती है। इसलिये बुराईसे बचें। मनको, वाणीको, शरीरको जहाँ तक बने लगाये नहीं बुराईमें, अशुभमें। निरंतर शुभमें लगाता रहे। वह शुभ क्या है? जो भगवान्की ओर लगा वो तो शुभ और बाकी सारा अशुभ। तुलसीदासजी महाराज इतने बड़े संत पर जहाँ इस विषयपर बोले इतना कड़ा बोल गये, इतना कड़ा बोल गये कि कोई सभ्य आदमी नहीं बोल सकता। 'जरौं'—आग लग जाय—ये पहला शब्द

जरौं सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु-पितु भाइ।
सन्मुख होत जे रामपद, करत न सहज सहाइ॥

जो भगवत्चरणारविन्दके सन्मुख होनेमें स्वाभाविक सहायता नहीं करता उस सबमें आग लग जाय, आग लग जाय—जरौं। भला कहा भई तुमने—दूसरोंकी बात कही, अपनी बात तो नहीं कही।

'जरि जाहु सो जीवन-जानकीनाथ, जिये जगमें तुम्हरै बिनु ह्वै।

जो जीवन तुम्हारा नहीं हो गया उस जीवनमें आग लग जाय। हम धर्मात्मा हैं। उस धर्ममें भी आग लग जाय।

सो सब धर्म कर्म जरि जाऊ, जँह न राम पद पंकज भाऊ।

भगवत्चरणारविन्दमें प्रेम नहीं तो धर्म कर्ममें भी आग लग जाय, धन दौलतकी बात क्या?

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही

निरंतर अपने मनको, अपने शरीरको, अपनी वाणीको शुभमें लगाता रहे, भगवान्‌में लगाता रहे—ये जीवनका असली काम। यहींसे मानवताका आरम्भ होता है। मानवमें और पशुमें अन्तर क्या है? पशु केवल भोग देखता है और मानव भोगके साथ विवेकको जोड़कर उचित भोग देखता है। परिणाम देखता है जो परिणाम नहीं देखता मानव वो पशु है या मानव पिशाच है। मनुष्यका धर्म है—अपने जीवनको भगवान्‌की ओर लगावे। मानवताके मार्गपर आरुढ़ हो। ये जबतक भोग सामने है तबतक मनुष्यके मनमें त्याग नहीं आवेगा। त्याग नहीं आवेगा—पवित्रता नहीं आवेगी। इसी बंगालकी बात पुरानी बात। उस समयके लोग यहाँपर होंगे—भाई वैद्यनाथ देवड़ा बैठे। इनको मालूम है हमलोग साथ रहे उस युगकी बात। देशके लिये प्राणदान देना है यह बात आज हमारे मनमें नहीं है। गिर गये। हम बच्चे आपसमें पूछा करते कि अपनेको फाँसी कब होगी। उसके बदलेमें न उस समय मिलनेकी बात थी मिनिस्टरकी,

न किसी पदकी, न अधिकारकी, न माला पुष्पोंके हारकी, न अभिनन्दनकी। पता है इस बातका हमलोग जब यहाँ पर १९१६ में ६ लड़के गिरफ्तार हुए, हमारे पहले प्रभुदयाल गिरफ्तार हुए थे। उस समय कहते थे पीछेसे यही कि समाजने पब्लिक मीटिंग की और इस मीटिंगमें कहा गया कि समाजके कलंक थे, निकल गये बड़ा अच्छा हुआ—ऐसी बात है। इतना आतंक था। हमारे एक साहित्य सम्बन्धी समिति थी। नारायणदासजी बाजोरिया उसके मंत्री थे। हमलोगोंने एक गीता निकाली थी, छोटीसी। उस गीताके टाइटिल पेजपर चित्र था भारतमाताका। एक हाथमें उसके माताके गीता, एक हाथमें तलवार रही। जब हमलोग पकड़े गये इतना आतंक फैला—नारायणदास बिचारेकी इच्छाके विरुद्ध वो गीता जला दी गयी—ये एक जमाना था। हमारे समाजका एक दल। उस समय न सामने मिनिस्टरी थी, न सामने सामान था, न कोई पद था। वहाँ वास्तविक त्याग था। बच्चे बंगालके थे। उनका था मरणोन्माद। मरणोन्माद जिसे कहते हैं—मरनेके लिये व्याकुल, कब मरें—एक चीज थी। उत्साह और त्यागकी एक चीज थी। १९२० के लगभगकी बात है। मैं बम्बईमें था। यहाँ बंगालसे निकाल दिया गया था। बम्बईमें रहा। फिर जमुनालालजीसे मेरी मित्रता थी। उन्होंने कृपापूर्वक मुझको बुला लिया कि तुम यहाँ आ जाओ। मैं वहाँ था तो लाला लाजपतराय आये वहाँपर। वे ठहरे हुए थे मेरे पास ही। मैं जुहू गया था। जुहूमें एक स्थान है। एक ज्योतिषीके पास चला गया था। कौतूहलसे ऐसे ही। शामको लौटा तो लालाजीने कहा—तुम कहाँ गये थे। मैंने कहा—ज्योतिषीके पास गया था। वे बोले—वो कुछ जानता भी है? बताता भी है? मैंने कहा—बताता तो है। गिरफ्तार हो चुके थे, शायद नेहरूजी भी गिरफ्तार हो गये थे। वे नहीं हुए। उन्होंने पूछा—कल जाओ तो

पूछ आना कि लाला लाजपतराय कब गिरफ्तार होगा? तब बताइये कि गिरफ्तार होनेकी इच्छा है। क्यों इच्छा है? उसमें गौरवका बोध है, त्याग है। जहाँ गौरवका बोध है वहाँ त्याग पवित्र होता है। नहीं तो आजका तो त्याग भी भोगार्थ होता है। आज तो सर्टिफिकेट ली जाती है कि हमने इतने महीनेतक जेल काटी थी तो इसके बदलेमें क्या मिलना चाहिये? क्यों नहीं मिलता, हमारा हक है। पर जो फाँसियोंपर चढ़ गये, तख्तोंपर जो इस स्वराज्यकी नींवके रोड़े बनकर उसके अन्दर कूट दिये गये। उनका नाम नहीं, उनकी कहीं गाथा नहीं। इतिहासमें जिनका नाम नहीं आवेगा। पर सच पूछिये तो उन्हींके रक्तपर ये स्वराज्यकी दीवार खड़ी है। रक्तसे सींचा उसको हमलोगोंने स्वराज्यके प्रासादको। भोग लेनेवाले तो बहुत आज भोग रहे हैं। यह कहनेका मतलब इतना ही है कि जहाँ लक्ष्य भोग होता है वहाँ त्याग नहीं होता। त्यागके रूपमें भी भोग पूजा होती है पर वहाँ पवित्रता नहीं आती, स्वार्थ रहता है। श्रीअरविन्दने पत्र लिखा अपने घरको। उसमें लिखा ये मत समझना कि साढ़े तीन हाथका ये अरविन्द है। तीस करोड़ मानवसे भरा हुआ जो भारतवर्ष है—ये अरविन्द है। उन्होंने एक लेख लिखा था। उस समय वहाँ एक पत्र निकलता था—'धर्म' वो पत्र अरविन्दका था बंगलामें। अंग्रेजीमें निकलता था—'कर्मयोगी' और बंगलामें निकलता था 'धर्म'। साप्ताहिक था। उसमें उन्होंने एक लेख लिखा था—देशभक्तिका क्या अर्थ है? देशभक्ति किसे कहते हैं—ये समझनेकी चीज है। उन्होंने बड़ी थोड़ी-सी भाषामें, थोड़ेसे वाक्योंमें बड़ी सुन्दर उसकी परिभाषा कर दी। उन्होंने कहा—देशात्मबोधका नाम देशभक्ति है। देश मैं हूँ। देशकी हानि मेरी हानि, देशका गौरव मेरा गौरव, देशका विनाश मेरा विनाश, देशका स्वार्थ मेरा स्वार्थ। ये जबतक रहता है तबतक देशके लिये त्याग होता है और जहाँ

अपना स्वार्थ देशके स्वार्थसे अड़ गया, संघर्ष हो गया और जहाँ अपने स्वार्थके रक्षाकी चीज सामने ज्यादा आ गयी वहाँ देशको आदमी बेच देगा, देश भूल जायेगा। यही संसारमें आज हो रहा है। व्यक्तिवाद, ये क्या चीज है? भोगकामना, जीवनका लक्ष्य भोग। ये जबतक रहेगा तबतक शान्ति होगी नहीं, सुख मिलेगा नहीं। चाहे कोई इज्म आ जाय, कैपिटलिज्म मिट जाय, सोशलिस्म आ जाय, कम्यूनिज्म आ जाय। इज्म बहुतसे हैं। कोई इज्म आ जाय। जिस इज्ममें भोगकी प्रधानता है वहाँ इज्म दुःखका, अशान्तिका कारण होगा। कोई वाद दुःखको मिटा देगा ये सम्भव नहीं, दुःखको मिटानेके लिये। दुःख तभी मिटेगा—जीवनमें लाना पड़ेगा अध्यात्मको। यूरोप आज अध्यात्मका भूखा है। मेरे पास बहुतसे यूरोपियन सज्जनोंके पत्र आते हैं। एक जर्मन आया उस साल मेरे पास ठहरा था छः महीने तक। एक जर्मन नौजवान था। मैंने कहा—भाई, धोती-वोती पहनो। धोती पहनने लगा, तिलक करने लगा। उसका नाम था गयेश। अभी वह बर्लिन यूनिवर्सिटीमें आफीसर है। क्यों आया? किसलिये ऐसा अन्दाज हुआ कि हिन्दुस्तानमें आध्यात्मिकता है, आध्यात्मिक भूख मिटेगी। मिटती नहीं है आज। यूरोपियन जो आते हैं हमारा दुर्भाग्य है कि वे निराश जाते हैं। देखते हैं कि भारतवर्ष तो हमारी नकल करने लगा। हमारे जैसे मकान आदि। अपनी कलाको छोड़ दिया। अमेरिकन ढाँचा हमारे मकानमें आ गया। बहुत पहले बंगालमें हमलोग गाया करते थे—

निज वासहु में परवासी होले, परहास खते समुदाय दिले।
पर आनन कानन भाषण रे, पर दीप शिखा नगरे नगरे॥
तुमि जे तिमिरे तुमि शे तिमिरे

बंगलाका गान है ये स्वदेशी युगकी बात है।

निज वासहु में परवासी होले, परहास खते समुदाय दिले।
पर आनन कानन भाषण रे, पर दीप शिखा नगरे नगरे॥

हम घरमें विदेशी हो गये, अपनी जन्मभूमिमें हम परदेशी बन गये। हमने सबकुछ अपना दूसरेके दासत्वमें दे दिया। 'पर आनन कानन भाषण रे' हमारा चेहरा दूसरोंका हो गया। इसी ढंगका चेहरा रखेंगे दूसरा नहीं। हमारे बाग-बगीचे वैसे हो गये। हमारी बोली वैसी हो गयी और हमारे घरोंकी ज्योति वहाँसे आती है वो वैसी हो गयी। हम अन्धकारमें रहे। अंग्रेज तो गये पर अंग्रेजियत नहीं गयी। सबसे बड़ी बुरी चीज होती है दिमागी परतन्त्रता। मनुष्य शरीरसे शायद सच्चा स्वतंत्र होगा पर उसके दिमागमें जबतक परतंत्रता भरी है तबतक वो उसकी नकल करता रहेगा। इसका अर्थ ये नहीं कि हम चीज कहींसे लें नहीं। चीज जहाँसे मिले हमें लेनी चाहिये उदारताके साथ। अच्छेका विरोध नहीं, पर वो चूँकि दूसरोंका—इसलिये अच्छा है और अपने अच्छेको भूल जायँ ये मूर्खता है। पर होता क्या है? परानुकरण—परायणता तब होती है जब अपने जीवनपर, अपनी संस्कृतिपर अनास्था हो जाती है। मैं दूसरी बात कहने लगा परन्तु ये कामकी चीज है। जब जीवनमें यह बात आ जाती है किसी राष्ट्रके लिये—हमारा इतिहास कुछ भी नहीं था। हमारे पूर्व पुरुष बुद्धिमान नहीं थे। हमारी संस्कृति नीची थी। अंग्रेजोंने ये सिखाया—जिस किसी विजेता को। विजित जातिपर शासन करना हो ये राजनीति है तो उसकी अपने जीवनसे आस्था उठा दे—वो जीत लिया गया। भारतवर्षमें वही चीज हुई। कही, एकान्तमें, कही उपनिषदोंपर। ऐसे उपनिषद हैं ये तो बड़ी अच्छी बात है, बड़ी सुन्दर बात और वो शंकराचार्यने कटु भाष्य किया। बोले—ये सब पुरानी चीजें। संस्कृतकी ये बेड लेंग्वेजकी चीजें हैं इनकी—मरी भाषा। गाँधीजीने इनका उपहास किया था। 'रघुवर तुमको मेरी लाज' पद उनको प्रिय था। उस समय सुना करते थे। एक

कहीं का शहर—नाम नहीं लूँगा। कहीं बाहर, वकीलोंके समुदायमें कोई वकील यहाँ हो तो नाराज मत होना। वकीलोंके समुदायमें—एकने कहा—ये कहाँका पद है। उसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ। पर्चे बँटे क्योंकि गाँधीजीने सुना था। अंग्रेजीमें अनुवाद हुआ बाँटा गया। उन लोगोंने कहा—ये तो बड़ा अच्छा—ये तो इतनी ऊँची बात। कहाँसे बोले हिन्दी पोयेट्री। तुलसीदासजी ऐसा लिखते हैं। अब तुलसीदासका पता नहीं कि इसमें क्या लिखा है ये पता जरूर है। तुलसीदासका पता नहीं—ये दिमागी परतंत्रता अब भी हमारे अन्दर बनी है। ये जबतक हमारे अन्दर बनी है तबतक भारतीयताका उज्ज्वल विकास हमारे जीवनसे हट रहा है—नहीं रहेगा। इसलिये त्यागकी महिमा हटी, भोगकी महिमा आयी।

हमारे जीवनमें, भारतीय जीवनमें त्याग लक्ष्य है, भोग लक्ष्य नहीं है। भोग अगर पास भी है तो उनको त्यागपूर्वक भोग करो। भोगके लिये भोगका भोग नहीं त्यागके लिये भोगका भोग। गृहस्थजीवन वानप्रस्थ संन्यासकी तैयारीके लिये भोगोंके लिये नहीं—ये हमारा सिद्धान्त। आध्यात्मिकताकी, त्यागकी जीवनमें आवश्यकता है। ये एक बात सबसे पहले स्थापन कर लेवें जीवनमें। सुख नहीं मिलेगा और कहीं। चाहे आप बात मानें या न मानें, समझें या न समझें। तेल निकलेगा वहींसे जहाँ है। बालूके पेरेसे तेल नहीं निकलेगा, नहीं निकलेगा। क्योंकि वहाँ है ही नहीं। भोगोंमें सुख शान्ति नहीं मिलेगी, नहीं मिलेगी क्योंकि वहाँ है ही नहीं। भोग यदि भगवानकी पूजा सामग्री रहे तो रहे। भोगोंका विरोध नहीं। विरोध है भगवानके स्थानपर अधिकार कर लेनेका। भोग रहे भगवान्‌की पूजा सामग्री बनकर, साधन बनकर रहें। भोग बड़े अच्छे और नहीं तो भोग रोग है, नहीं तो त्याग करने योग्य है। उनके द्वारा शान्ति? आज जो कलह है, इतना विवाद है, संवाद है, जगत्‌में चारों तरफ हाहाकार मचा है।

ये क्यों मचा है? पहले भी कई बार ऐसा हुआ जब-जब भोगका आदर बढ़ा। जब-जब त्यागकी अवमानना हुई। जब-जब भगवान्‌की ओरसे चित्त हटा। भोगोंका दासत्व प्राप्त किया समाजने। तब-तब समाजमें इस प्रकारकी उच्छृंखलता, इस प्रकारका दु:ख, विपत्ति, विनाश आया और आता रहेगा। समाज नहीं मानता क्या करें? वहाँ यह बात है कि व्यक्ति—जिसके समझमें आ जाय वो मान ले। **'गई सो गई अब राख रही को'।** ये नहीं कि भाई बड़े-बूढ़े होंगे तब करेंगे। ये बच्चेके भी सीखनेकी बात है। एक भ्रमर था—भँवरा। वह कमलपर जाकर बैठ गया। कमलके रसको पीने लगा। सन्ध्या होने लगी। जब शाम होती है सूर्य जब छिपते हैं तो कमल मुच जाता है, भ्रमर अन्दर रहा, रसपान कर रहा। सोचा उड़ जायँ जल्दीसे, कहीं कमल मुचके अन्दर रह जायेंगे। पर रसका लोभ था। सोचा मनमें अरे क्या है?

रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं।
अवश्यान् पंकजश्री इत्थं विचन्तयति॥

भ्रमर सोचने लगा कि क्या हर्ज है—रात बीतेगी, प्रात:काल होगा, सुप्रभात होगा। भगवान् सूर्य उदित होंगे। उनकी किरणें फैलेंगी, पड़ेंगी इस कमलपर। कमल पुन: विकसित होगा। तब निकलकर भाग जायेंगे। आरामसे भोगो, रसपान करो—ये सोच रहा था। इतनेमें एक जंगली हाथी आया। हाथीने कमलको नाल समेत उखाड़ लिया और दाँतोंमें लेकर उसे पीस डाला। कमलके साथ भ्रमर भी पिस गया। इसलिये न मालूम कब मौत आ जाय। अभी आरामसे बैठे हैं। क्षणभरके बाद जीवन रहेगा कि नहीं कोई नहीं कह सकता। जीवन गया—हाथका मिला हुआ अवसर गया। यह मौका नहीं मिलता है बार-बार। मिले हुए मानव जीवनको खो देना ये सबसे बड़ा नुकसान है। इससे बड़ा कोई नुकसान नहीं। मानव जीवन जिस कामके लिये

मिला वही काम मानव जीवनमें करना है। कम से कम उस मार्गपर आरुढ़ तो हो जायँ, चलने तो लगें।

मानव जीवनका उद्देश्य भोग नहीं। इसका उद्देश्य भगवान् हैं। लक्ष्य भगवान् हैं। भोग छोड़ना नहीं पड़ता। भोगकी चिन्ता छोड़नी पड़ती है और फिर एक बड़ी चीज होगी अगर भगवान्‌को अर्पण कर दिया हमने अपने आपको तो हमारी भगवान् संभाल करेंगे—ये विश्वास, ये सत्य तथ्य है। ये सत्य है, ये अनुभव है कि जिसने अपने आपको भगवान्‌के चरणोंमें डाल दिया उसकी रक्षाका सारा भार भगवान् लेते हैं। गीतामें तो घोषणा की है—

अनन्ययाश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता/९/२२)

जो है उसकी रक्षा करनेका भार मुझपर रहा और जो नहीं है, उसे ला देनेका भार मुझपर रहा। ये भगवान्‌के वाक्य हैं। **'अहं वहामि'**— मैं स्वयं वहन करता हूँ इस बोझको। पर विश्वास नहीं। विश्वासपूर्वक हम अपने आपको भगवच्चरणारविन्दमें अर्पण कर दें। अर्पण करके उनके बन जायँ। फिर तो हम निश्चिन्त हो गये। सारी चिन्ता वो करेंगे। यद्यपि अर्पण करनेवाला इसमें रक्खे नहीं अपने पास पूरा-पूरा समर्पित कर दे। इसे कहते हैं—पूर्ण समर्पण, पूर्ण समर्पण।

जबतक ये न हो तबतक समर्पण करता रहे। जितना हो सके करता रहे। समर्पण करनेकी विधि क्या है? बड़ी सीधी बात है महाराज—आज हो जाय समर्पण। अभी हो जाय। छोटी बच्ची है, सगाईकी बात चल रही है, अब तो खैर डाइवोर्स भी हो गया। न मालूम क्या-क्या और होगा? अपनी संस्कृतिकी बात। माता पिताने सम्बन्ध कर दिया, अमुकसे सगाई हो गयी। लड़कीने सुन लिया घरमें। बोली नहीं—सुनते ही उसकी बन गयी, बस बन गयी। कुछ

किया कराया नहीं। उसका दृढ़ प्रत्यय, निश्चय हो गया। मैं उसकी हो गयी। बड़ा आश्चर्य किया यूरोपके विद्वानोंने। वो कहते हैं कि कोई देश हमने देखा ही नहीं जहाँ मरनेके बाद भी अपने पतिको वह अपना स्वामी मानती है। अद्भुत देश है महाराजजी, अदुभुत देश है। कितना विचित्र, कितनी पवित्रता है यहाँपर इस देशमें। समर्पण अभी हो जाय, अभी भगवान्के हो जाइये, हो गये, बस हो गये, देरका काम नहीं है। पर जबतक नहीं होते, सन्देह मनमें है तबतक बार-बार कहनेपर भी नहीं होते। बार-बार समर्पण करते रहें और मनमें है नहीं तबतक नहीं हुए। और मनमें भी समर्पणका भाव आ गया तो उसके बाद चाहे न कहें—वो लड़की बोलती नहीं कि मैं उसकी हो गयी, उसका जीवन बोलता है कि उसकी हो गयी। मैं दूसरेकी चर्चा नहीं करता। अकबरके जमानेकी बात है। उदयपुरके पास ही एक दूसरा छोटा राज्य था वहाँकी बात है। एक राजपूत लड़कीकी सगाई हो गयी, ब्याह नहीं हुआ किसी कारणसे। बादशाहने चढ़ाई कर दी। लड़का जिसका विवाह नहीं हुआ था, सम्बन्ध नहीं हुआ था वह गया युद्धमें। उस लड़कीने भी मर्दाना पोशाक पहन ली। वह भी गयी अलग। लड़का मर गया। लड़की उस लाशको ढूँढ़े, ढूँढ़ती फिरे। दूर अकबर स्वयं आये थे। कुछ मुगल सिपाही पहुँचे। उन लोगोंने उस लड़केको तंग करना शुरू कर दिया—मारना। वह बड़ा वीर। उसने अकेले दसों-बीसोंको सुला दिया वहाँपर, हटे नहीं वहाँसे। लुहलुहान हो गया। अकबरने देखा—ये बड़ा वीर नौजवान लड़का मालूम होता है। अकबर समीप आ गये। अकबरने कहा—तुम कौन हो? राजपूत कुमार! कौन हो तुम? उसने कहा—मैं तो स्त्री हूँ। अरे! स्त्री हो। यहाँ कैसे आ गयी। बोली—मेरे पति आये थे युद्धमें। उनकी सहायताके लिये मैं आयी। उनका देहान्त हो गया। मैं शव खोज रही थी सती होनेके लिये और ये बीचमें सिपाहियोंने मुझको तंग किया इसलिये

मैंने भी उसका प्रतिकार किया। अकबरने पूछा—क्या विवाह हुआ था। बोली—ब्याह तो नहीं हुआ था। अकबरने पूछा—ब्याह नहीं हुआ और तुम पत्नी कैसे हो गयी? बोली—हम राजपूत हैं। वाक्यदान हो गया तो विवाह हो गया। मैं उसकी बन गयी। अकबरने कहा—देवी! तुम धन्य हो, तुम धन्य हो। पतिकी लाश खोज लो। तुम्हें कोई नहीं मारेगा। इसी प्रकार हम आज मनमें करें—हम भगवान्के हो गये, हम भगवान्के हो जायँ। जहाँ भगवान्के हो गये—ये निश्चित बात है, सिद्धान्त नहीं अनुभव है ये बहुतोंका। किसी अंशमें मेरा भी। भगवान् नालायकोंपर कृपा करते हैं भला। ये भगवान्का एक विरुद है,

'विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरन पर प्रीति'

विरदके लिये वे ऊँचोंको छोड़कर पाँवरों पर प्रीति करते हैं। ये उनका स्वभाव है। हम जैसे नालायक, भरे हुए दोषोंसे, उनपर भी कृपा करते हैं इसलिये और भी सिद्ध होनेकी बात है कि भगवान् तो कृपा ही करना जानते हैं और कुछ करना जानते ही नहीं। नहीं तो हमपर कृपा क्यों करते? भगवान् बड़े कृपालु—सच्ची बात। जो उनका हो जाय उसका सारा भार भगवान् ले लेते हैं—पूराका पूरा। **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**।

इसलिये जो कुछ हमलोग करें सो करते रहें इसके साथ भगवान्को जोड़ दें, अध्यात्मको जोड़ दें। जबतक जीवनमें अध्यात्म नहीं आवेगा तबतक जीवनमें शान्ति नहीं मिलेगी। आज ही एक सज्जन मेरे पास सवेरे आये। अच्छे आदमी हैं। उन्होंने कहा कि चित्त शान्त नहीं। कोई कमी नहीं है। सब प्रकारके सुख-साधन मौजूद है परन्तु चित्त बड़ा अशान्त है तो शान्ति बाहर बाजारमें नहीं मिलती। शान्ति किसी कीमतपर नहीं मिलती। शान्ति तो अपनी आत्मामें है। जबतक आत्मा बिका है भोगोंके हाथ तबतक अशान्ति नहीं रहेगी। शान्ति आवेगी नहीं। जब आत्मा स्वस्थ हो गया, आत्मामें आ गया—ये स्वस्थ कौन?

बीमार कौन? जो प्रकृतिस्थ है वो बीमार जो आत्मस्थ है वो स्वस्थ—ये नियम है। गीतामें दोनों शब्द आये हैं। प्रकृतिस्थ माने जीव, आत्मस्थ स्वस्थ माने गुणातीत, स्वस्थ गुणातीत।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणासंङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मषु॥

(गीता/१३/२९)

ये अस्वस्थ हैं। प्रकृतिस्थ माने अस्वस्थ। भगवान्‌में जिसका चित्त स्थिर हो गया उसको शान्ति मिलेगी अन्दरसे। शान्ति सुख भगवान्‌में है। जहाँ है वहाँसे प्राप्त होगा। एक भजन जो गाया उसका मैं भाव बता दूँ आपको।

सौंप दिये मन प्राण तुम्हींको, सौंप दिये ममता-अभिमान॥

हमारा तो सच कहें आपसे—हमारा आदर्श गोपी है। गोपी आदर्श कैसे? अपने जीवनका आदर्श गोपी है और ये ऐसा जीवनमें लगा अपनेको कि गोपीके समान त्याग कहीं हुआ नहीं। गोपीको आदर्श बनाया पर गोपीका त्याग तो हमारे जीवनमें नहीं है। बिल्कुल नहीं, शतांश भी नहीं। पर आदर्श वह है जहाँ त्यागकी पराकाष्ठा है, जहाँ स्वसुख है ही नहीं। स्वसुखकी वाञ्छा तो अलग रही। स्वसुखकी कल्पना नहीं है। चैतन्य महाप्रभुने कहा—चैतन्य चरितामृतमें—'निजेन्द्रिय प्रीतिइच्छा ताहार नाम काम' अपनी इन्द्रियोंको सुख पहुँचानेकी जहाँ इच्छा उसका नाम काम है। यही काम और प्रेममें अन्तर है। अपना सबकुछ दे करके जो प्रेमास्पदका सुख चाहता है उसका नाम प्रेम है और जो दूसरेसे सुखी होना चाहता है उसका नाम काम है। चाहे वो भगवान्‌से चाहता है—प्रेम और काम।

'तत्सुखे सुखित्वम्'—ये प्रेम देना जानता है, लेना नहीं जानता। प्रेममें विक्रय नहीं होता, खरीद नहीं होती, दूकान नहीं लगती, खरीदफरोशी नहीं है वहाँपर। वहाँ केवल देना है और देना

है उस देनेको पानेके लिये भगवान् लालायित रहते हैं—आप्तकाम, पूर्णकाम, नित्यकाम। जो देना ही देना है उस देनेवालेकी वस्तु लेनेके लिये आप्यायित रहते हैं। 'सौंप दिये मन प्राण'—ये गोपी कहती है बड़ी सुन्दर भावना है मैंने अपने मनको, अपने तनको, अपने प्राणोंको आपके चरणोंमें सौंप दिया। केवल यही नहीं मैंने अपनी ममता सौंप दी, मैंने अपना अभिमान भी आपको सौंप दिया। इसलिये जब मन तुम्हारा हो गया, शरीर तुम्हारा हो गया, ममता तुम्हारी हो गयी, प्राण तुम्हारे हो गये तो अपनी चीजको तुम चाहे जैसे बरतो। भक्त कभी, प्रेमी कभी नहीं कहता—यूँ करो। वह कहता है—तुम्हारी चाह पूरी हो। मेरी चाह कभी तुम्हारे विरुद्ध हो नहीं। चाह ही न हो, हो तो विरुद्ध न हो, विरुद्ध हो तो पूरी न करना सरकार। मेरे मनमें कभी चाह पैदा न हो और यदि पैदा हो तो तुम्हारी चाहके अनुकूल हो और तुम्हारी चाहके विरुद्ध यदि मेरी चाह कभी पैदा हो जाय तो उसे पूरी मत करना। कभी तुम्हारी चाह पूरी हो तो अब तुम क्या करो?

'मत सकुचाओ मनकी करते सोचो नहीं दूसरी बात।'

न तो संकोच करो अपने मनकी करते। बोले—नाराज हो जायेगा, नाराज जिसके पास अपनी ममता होगी वो होगा। तुम्हारे मनमें आवे सो करो।

और तुम इस बातको जानते हो कि तुम्हारे सिवा मेरा कुछ रह ही नहीं गया। कुछ भी मेरे पास मेरा नहीं रहा। मेरा भी जो 'मेरा' था, 'मैं' था वो भी तुम्हारा हो गया और जो 'मैं' का 'मेरा' था वो भी तुम्हारा हो गया। मान-अपमान, सुख-दुःखसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। मेरा ज्ञान नहीं, मेरा अपमान नहीं, मेरा दुःख नहीं, मेरा सुख नहीं। अब तो केवल तुमसे मेरा सम्बन्ध हो गया। न तो मुझे मोक्षकी इच्छा है। मेरा मोक्ष भी तुम, मेरा कैवल्य भी तुम और तुम्हीं केवल मेरे बन्धन। एक कविने कहा बड़ा सुन्दर।

अब तो बन्ध मोक्ष की इच्छा, ब्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बन्धन है, मुक्ति चरण से झरती है॥

मेरे तो तुम्हीं मोक्ष हो, तुम्हीं बन्धन हो। मैं कहीं भी रहूँ, कैसे भी रहूँ लेकिन निरंतर वो गोपी कहती है कि तुम्हारे चरणोंमें बसी रहती हूँ और कहीं नहीं रहती। मेरे सारे आश्रय जो अनित्य थे वे सब टूट गये। सारे सम्बन्ध जो अनित्य थे वे सब टूट गये। अब बस एक तुमसे सम्बन्ध रह गया। अब तुम स्वच्छन्द विहार करो, चाहे जो इच्छा हो सो करो। जैसे बरतो मैं तुम्हारा हो गया—ये समर्पणकी पराकाष्ठा है। समर्पणमें जहाँ अहंको रख लेता है आदमी। अरविन्दने लिखा है कि जहाँतक आदमीने अहंको रख लिया फिर समर्पण पूरा नहीं हुआ। समर्पणका अर्थ है पूर्ण रूपमें।

❖❖❖

हुए विदेशी हम स्वदेशमें

हुए विदेशी हम स्वदेशमें, कर सारा निजस्व बलिदान।
करते अन्ध 'परानुकरण', तज भारतीय संस्कृति अभिमान॥
'पर'- भाषा, 'पर'-वेष, 'पराया'-खानपान, सब 'पर' आचार।
शय्या-सज्जा, भवन-भ्रमण सब ही 'पर', 'पर' मन-बुद्धि विचार॥
बच्चे कहने लगे पिताको 'पापा', माँको 'मम्मी' आज।
परम्परागत चाल छोड़ सब, सजन लगे 'पराया' साज॥
हटा हृदयसे गुरुजन, माता-पिता, पूर्वजोंका सम्मान।
'पर' बननेमें लगे मानने उन्नति, प्रगति, विकास महान॥

(पद रत्नाकर/पदसं०१४९६)

प्रेतसे बातचीत

मैं बम्बईमें रहता था। १९२७ तक मैं बम्बईमें रहा। 'कल्याण' का प्रकाशन वहींसे हुआ। १३ महीने वहाँसे निकला कल्याण। उसके बाद गोरखपुर आ गया। आया था गोरखपुर ३-४ महीनेके लिये और आज ३९ वर्ष हो गये। भगवान्का विधान। मैंने कहा ही था कि रामके नामका उपदेश मुझको जेलमें हुआ और नजरबन्दीके समय उसका साधन चला। भगवान्का नाम कुछ प्रिय हो गया। बम्बई में रहता, काम करता। रोज मैं बम्बईमें शामको एक चौपाटी नामक स्थान है, जहाँ लोग घूमने जाया करते हैं वहाँ मैं जाता और अलग-सा एक अंधेरी-सी जगह थी। वहाँपर एक बेंचपर जाकर बैठ जाता और चुपचाप नाम जप किया करता। ये रोजका क्रम था तो एक दिनकी बात है मैं बैठा नाम जप कर रहा था। इतनेमें मैंने देखा कि एक पारसी सज्जन, पारसी पुरोहित जो होते हैं। वो सफेद कपड़े पहनते हैं। जब मैंने देखा कि ये बैठते नहीं, खड़े हुए हैं तब मेरे मनमें आया कि जरा इनसे कह देना चाहिये सभ्यताकी बात कि आप विराज जायँ। मैंने उनसे कहा आप बैठ जाइये।

मेरा ये कहना था कि वो बोले—मुझे आपसे एक बात कहनी है आप डरियेगा नहीं। मैं प्रेत हूँ। ये सच्ची घटना सुना रहा हूँ आपको। मैं प्रेत हूँ कहते ही मैं डर गया। मेरे बदनमें पसीना आ गया। जरा-सा काँप सा गया। छोटी उम्र थी उस समय। अबसे ४४ वर्ष पहलेकी बात है। डर लगा तो उन्होंने कहा डरिये नहीं। आप मेरी बात सुनिये। आपको मुझसे कोई डर नहीं है पर आपको मेरा एक उपकार करना है। तो अब फिर डर निकला। बातचीत शुरू हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि देखिये अगर आप मुझे पहलेसे न पुकारते तो मैं बोल नहीं

सकता। प्रेतों की अलग-अलग शक्तियाँ होती हैं। कोई बोल सकते, कोई जा सकते, कोई नहीं जा सकते। कोई कुछ क्रिया कर सकते जैसे यहाँपर विभिन्न प्रकारकी शक्तियाँ होती हैं ऐसे ही प्रेतलोकमें भी होती हैं। उन्होंने कहा—मैं खड़ा रहता। कोई मुझे पहलेसे बुला ले तब मैं बोल सकता हूँ नहीं तो बोल नहीं सकता। बड़ा अच्छा किया, बड़ा उपकार किया आपने।

मैं प्रेत हूँ। बड़े आश्चर्य की सुनेंगे आप और मेरी दुर्गति है। आप मेरा गया श्राद्ध करवा दें। पारसी कहता है गया श्राद्ध करवा दें। अब तो फिर मेरी उनसे बातें होने लगीं। मैंने उनसे कई प्रश्न किये। उनका उन्होंने उत्तर दिया। उस उत्तरमें एक बात ये थी कि जो लोग किसी से वैर-द्वेष लेकर मरते हैं उनकी बड़ी दुर्गति होती है। उतनी दुर्गति कामी, क्रोधीकी नहीं होती और भी बहुत-सी बातें हैं। उनका नाम, पता पूछा। बाँधड़ा एक वहाँ सबर्ब है, वहाँ बाहर गाँव है बम्बई के पास। वहाँका उन्होंने नाम पता बताया, ठीक नाम मिल गया। पता मिल गया। छः महीने पहले उनकी मृत्यु हुई थी। ये बात ज्ञात हो गयी। मैंने कहा—अच्छी बात है, मैं आपका गया श्राद्ध करवाता हूँ। गयामें पिण्ड दिलवानेकी बात हुई थी। मेरे पास हरिराम नामके ब्राह्मण रहते थे। मैंने उनको भेजा और वहाँ पिण्डदान हुआ। पिण्डदान जिस दिन हुआ वो लौटकर हरिराम हीं आये थे। मैं तो रोज जाता। उस दिनके बाद वे नहीं दिखायी दिये। जिस दिन पिण्डदान हुआ, उस दिन फिर दिखायी दिये। मैंने कहा—क्यों, फिर कैसे? बोले—मैं तो आपके सामने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने आया हूँ। मुझको जो विपत्ति थी वो दूर हो गयी। अब मैं जा रहा हूँ किसी बहुत अच्छे स्थानमें और आपका धन्यवाद करने आया हूँ। मेरा पिण्ड आज लग गया।

इस घटनाके कहनेके दो मतलब हैं एक तो उस प्रश्नका सम्बन्ध और एक घटनासे अपने आप ये बात निकली कि ये पितरोंका श्राद्ध, पितरोंका तर्पण ये कपोल कल्पना की बात नहीं है कि उन्हें मिलता ही नहीं। मिलता अवश्य मिलता है और ये अवश्य गृहस्थको करना चाहिये। जरूर करना चाहिये। इसके बाद मुझे इसके बहुतसे प्रमाण और मिले। लेकिन उस दिनसे मेरी ये धारणा हो गयी कि श्राद्ध तर्पण जरूर करना चाहिये। किसीके भी बहकावेमें नहीं आना चाहिये। ये ऋषि-मुनियोंका देखा हुआ है। उनके अनुभव किया हुआ है। इस लोकमें करनेपर वहाँ कैसे मिलता है? प्रश्न करते हैं लोग कि अगर वो मुक्त हो गया तो फिर उसको कैसे मिलेगा? सीधी बात है हम कहीं मनीआर्डर किसीके नाम भेजें और वो न मिले तो वापस अपने पास आ जाता है। पापकर्म तो है नहीं, पुण्यकर्म है। पुण्यकर्म है अगर उनको नहीं मिलेगा तो हमारा पुण्य हमारे पास रह जायेगा। कोई बुरी बात तो हुई नहीं। यदि वो कहीं है बोले—कहीं स्थूल योनिमें जन्म हो गया तो उनको कैसे मिलेगा? ऐसे मिलेगा कि हम यहाँसे रुपया अमेरिका भेजते हैं यहाँका सिक्का वहाँ नहीं चलता। वह बदल करके वहाँका डालर मिल जाता है। इसी प्रकार जिस योनिमें जहाँपर भी वो जीव होगा, उसको वहाँके अनुरूप सुख उसे मिल जायेगा। बड़ी सीधी बात है। एक बात है कि श्राद्ध तर्पण करना चाहिये।

अब तो प्रश्नवाली बात है और बड़े कामकी बात है। हमलोग इतने बैठे हैं। किसीके मनमें भी अगर किसीसे वैर-विरोध हुआ हो, द्वेष हुआ हो वो चाहे वैर रखता हो पर अपने मनमें उससे वैर लेकर नहीं मरना है। नहीं तो दुर्गति होगी। ये समझनेकी बात है। पहली बात तो यह है कि अगर हमारे जीवनमें किसीसे कभी किसी बातको लेकर बहुत-सी बात ऐसी होती है कि व्यर्थ ही विरोध हो जाता है। बेमतलब जरा सा मतभेद हुआ कि कलह हो गया, विरोध हो गया। अथवा भूलसे हम समझ लेते हैं कि अमुक आदमी हमारा नुकसान कर रहा है। नुकसान चाहे वो नहीं करता पर हमारे मनमें आ रहा है कि वो नुकसान कर रहा है तो उससे हम वैर कर बैठते हैं और जब पता लगता है तो

ये नुकसान नहीं कर रहा था, अच्छा कर रहा था। तब पछताना पड़ता है। मनमें विरोध, वैर, द्वेष किसीके प्रति भी कभी न आवे। भगवान्‌ने भक्तोंके जहाँ लक्षण बतलाये हैं, वहाँ सबसे पहला लक्षण

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

सबसे पहली बात किसी भी प्राणी में द्वेष न रहे। द्वेष चाहता है विनाश। जिस किसीमें हमारा द्वेष है हमारी बुद्धि चाहेगी कि उसका नाश हो जाय। चाहे हम कहें नहीं, उसके विनाशमें, उसके ह्रासमें, उसकी अपगतिमें हमको सुख होगा। यह बहुत बुरी चीज है। ये भगवान्‌का बड़ा अपमान, बड़ा तिरस्कार है। सबमें रहनेवाले भगवान्‌के प्रति वैर-विरोधकी भावना ये बहुत बड़ा पाप है। इसलिये जिस किसीके जीवनमें कभी किसीसे विरोध हो गया मैं तो प्रार्थना करता हूँ कि वो मेरी बात माने, शास्त्रकी माने कि उससे लोग क्षमा माँग लें। अपने मनसे वैरको निकाल दें। अभिमान रखकर क्षमा न माँगनेवाला हमेशा नीचा है और अभिमान छोड़कर क्षमा माँगनेवाला वास्तवमें ऊँचा है। कोई इसमें पाप नहीं, कोई बुराई नहीं। अपने द्वारा कभी भूल हुई हो उसे स्वीकार करनेमें क्या लज्जा है? और भूल नहीं हुई, वो मानता है ना। वो मानता है तो उसकी मान्यताको हटाना—अच्छा भाई भूल हुई तो माफ करो। कोई हर्ज नहीं इसमें। किसीके जीवनमें भी जहर निकल जाय। अमृत आ जाय। ये एक बहुत बड़ा साधन भी है और व्यवहारमें भी इसकी बड़ी आवश्यकता है बल्कि संतोंका तो ये है कि वो बुरा करनेवालेका भला करते हैं।

एक संतकी कथा सुनी हमने। एक संत कहीं नौकापर सवार हुए जा रहे थे। उसमें दो आदमी ऐसे बैठे थे जिनको संतके नामसे विरोध था। वे बगलमें आ बैठे। एक इधरसे और दूसरा उधरसे। उसको सरकावें, कोनेमें खिसकावें। वह बिचारा खिसकता-खिसकता किनारे पर आ गया और किनारेकी जो नौकाकी बाड़ होती है उसपर बैठा

और धक्का देने लगे। तब आकाशवाणी हुई कि संत तुम कहो तुम्हारे साथ अकारण शत्रुता करनेवाले इन दोनोंका नाश कर दिया जाय। आकाशवाणी सुनते ही वे संत रोने लगे। उन दोनोंने देखा कि आकाशवाणी कह रही है कि नाश कर दें और ये रो रहा है तो कहेगा ही कि नाश कर दो क्योंकि भूल तो हमारी थी ही। वे दोनों काँप गये। संतने कहा कि आकाशवाणीसे देवता कोई बोलते हों अगर उनकी मुझपर कृपा है, अगर वे मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो इन दोनोंकी बुद्धिको सात्विक बना दें। इनके मनमें कहीं दुर्भावना पैदा ही न हो। कितना अच्छा है। अपने आप तो विशुद्ध हुए ही उनको भी विशुद्ध कर दिया।

विष्णुपुराणकी कथा है बड़ी सुन्दर प्रह्लादजीकी। शंड और मर्क ये दो गुरुपुत्र रहे। शंडामर्क प्रह्लादके शिक्षक। प्रह्लादकी शिक्षा जब विपरीत दिखायी दी हिरण्यकशिपुको अपने सिद्धान्तसे तो गुरुपुत्रोंको बुलाकर बड़ा उलाहना दिया कि तुमलोग क्या पढ़ा रहे हो? ये सब बेमतलबकी बातें हैं, हमारे विरोधकी बातें और ये हम जिस सिद्धान्तको नहीं मानते उसकी बातें पढ़ा रहे हो, ठीकसे पढ़ाओ। उन्होंने कहा—महाराज! हम तो ठीक पढ़ाते हैं पर ये मानता ही नहीं। बोले—कैसे नहीं मानता। मनवाओ। गुरुपुत्र बोले—न माने हिरण्यकशिपुने कहा—मार डालो। अब उन बिचारोंने तो बहुत चेष्टा की। प्रह्लादको समझाया, फुसलाया, धमकाया, सब कुछ किया। तांत्रिक अभिचार होता है। उन्होंने कृत्या उत्पन्न की। प्रह्लादका वध करनेके लिये कृत्या पैदा किया। कृत्या उत्पन्न हुई। कृत्या जब अभिचार से उत्पन्न होती है। तान्त्रिक पद्धतियाँ हैं। बहुत कम लोग जानते हैं जब कृत्या उत्पन्न हुई तो कृत्याके लिये ऐसा विधान है कि या तो वो जिस कामके लिये उत्पन्न की गयी है वह कर दे या उसका कोई वध कर दे या जिसने उत्पन्न की है उसका वध कर दे। प्रह्लादकी रक्षा तो हो गयी थी—वहाँ भगवान्‌के छिपे हुए पार्षद थे वे रक्षा कर रहे थे। प्रह्लादको तो

वो मार नहीं सकी उलटे उसने आकर उन दोनोंको मार दिया। शंड और मर्क दोनों गुरुपुत्र मरकर गिर गये। लाश गिर गयी अब प्रह्लाद रोते हैं। प्रह्लाद कहते हैं—हे भगवान्! बड़ा बुरा हुआ। मेरे कारणसे इन गुरुपुत्रोंके प्राण गये। अगर मेरे मनमें कभी द्वेष न आया हो, अगर मुझे जहर देनेवाले, मुझे साँपोंसे डँसवानेवाले, हाथियोंसे कुचलवानेवाले इनके प्रति भी मेरे मनमें यही भावना रही कि इनमें भी भगवान् हैं, कभी द्वेष न आया हो तो मेरे गुरुपुत्र जीवित हो उठें।

द्वेषको मनमें रखे ही नहीं, द्वेष करनेवालोंका भी मंगल करे। द्वेष करनेवालोंको भी अपनी ओरसे प्रेम दे। जहर देनेवालोंके जहरको अपना अमृत देकर अमृतमें बदल दें। ये अच्छी बात है ये बड़ा अभिमान होता है महाराज। बड़ी मूर्खतासे मनुष्य सोच लेता है कि हम नीच कैसे बनें? भूल तो हुई पर हम अब उस भूलको स्वीकार कैसे करें? ये पापका प्रभाव है अपनी भूलको स्वीकार न करना।

ईसाइयोंमें एक बड़ी सुन्दर एक पद्धति है उसे कन्फेसन कहते हैं। कन्फेसन स्वीकार करना, अपने पापको स्वीकार करना। अपने पापको, अपनी भूलको स्वीकार करनेमें कोई लज्जाकी बात नहीं। अपने पापको, भूलको स्वीकार कर ले। उसके लिये पश्चात्ताप करे जिसके प्रति हमारे द्वारा द्वेष हुआ हो उससे क्षमा माँगे। उसको आप्यायित करे। उसे प्रसन्न करे और उसके जीवनमें जो विष भरा हुआ था हमारे प्रति, उस विषको निकाल करके उसकी जगह अमृत भर दे। ये बहुत बड़ी बात है और ये पता नहीं लगता कि भगवान्का कौन-सा काम क्यों होता है? हम जिसको विरोधी मानते हैं, सम्भव है वो भगवान्का मंगल विधान हमारे अच्छेके लिये हो रहा हो। कौन जानता है?

कैकेयीने रामको वनवास दिया। कल राज्यसिंहासन होनेवाला है और ऐसा अनुचित रातमें कुछ काण्ड हुआ, उसमें कैकेयीजी निमित्त बनीं और रामको वनवास हो गया। कैकेयी कितनी बदनाम हुईं, इसकी

कोई सीमा नहीं। आजतक भी कैकेयीको लोग बुरा बतलाते हैं। एक बारकी बात है जब रामका राज्याभिषेक हो गया। सब माताओंसे राम मिल लिये। कैकेयीसे पहले मिले, उनको आप्यायित किया, सान्त्वना दी। ये वनमें ही हो गया था। कैकेयीने एक बार रामसे कहा कि बेटा! एक काम तू मेरा कर दे। रामने कहा—बोलो मैया। कैकेयी बोलीं—एक बार तू मुझे माँ कह दे। भरतने माँ कहना छोड़ दिया। स्वयं भरत जो उनका पुत्र है। जिसके लिये उन्होंने राज्यकी माँग की थी। भरत इतना.....कि उसने कैकेयीको माँ कहना छोड़ दिया। रामने कहा—माता मैं कहूँगा जरूर। पर मैं कह नहीं सकता कि इस बातको वो मान ही लेगा। रामने भरतको बुलाया। भगवान् राघवेन्द्र बोले—भैया! तुम तो मेरी सारी बात मानते ही हो। आज एक बात कहना चाहता हूँ तुम मान लेना। भरत गद्गद हो गय। बोले—आपको इतनी बात कहनी क्यों पड़ती है? मैं कोई बात नहीं मानता हूँ क्या? तब कहते हैं—एक बात है कैकेयीको माँ कहनेकी बात छोड़करके और जो कुछ आप कहें वो सब स्वीकार है। कैकेयीको माँ नहीं कहता।

पर कैकेयीने किया क्या? अध्यात्म रामायण देखिये। अध्यात्म रामायणका अयोध्याकाण्ड देखिये और एक बंगला रामायण है। रामचरितमानसमें बड़ी सुन्दर बातें लिखी हैं। अध्यात्ममें दूसरे ढंगसे कैकेयी अकेलेमें जाकर मिलती हैं। अकेलेमें रामसे मिलती है और रो पड़ती हैं। आँसुओंसे भगवान् के चरण पखार देती हैं और कहते हैं—रामभद्र मेरे समान कौन पापिनी होगी? मैंने तुमको वन भेज दिया। इतनी निष्ठुर, इतनी निर्दय लेकिन राम! मेरा मन ऐसा कहता है कि ये काम तो तुमने करवाया मुझसे। तेरी प्रेरणासे हुआ यह काम। मेरा मन कहता है। क्या ऐसी बात है? राम मुस्कुरा दिये। बोले—माँ! ऐसी ही बात है। तेरा कोई दोष नहीं है। ये काम मैंने ही करवाया है। उस रामायणमें आया है कि रामका वहाँपर बड़ा सुन्दर व्याख्यान है। राम कहते हैं कि जो सबसे प्रिय होता है, अपना होता है। उसीसे

कड़े-से-कड़ा काम लिया जाता है। दूसरोंकी मान-मर्यादा रहती है, दूसरोंसे संकोच होता है। जो अपना निकटस्थ...... कैकेयीसे कहा रामने कि मेरा उद्देश्य—जगतमें अत्याचारी दानवोंका विनाश करना पर वो होता कैसे? मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा होता कैसे? अगर तुम मुझे न भेजनेका प्रयास करती। तुमने वन भेज करके धर्मकी रक्षाके लिये जो मेरा अवतार हुआ, असुरोंके संहारके लिये अवतार हुआ उसकी पूर्तिमें ये तुमने सबसे पहले सहायता की जो मेरे वन भिजवानेका आयोजन किया। अगर तुम न करती तो न मुझे ये ऋषियोंकी अस्थियाँ देखनेको मिलतीं और न मैं प्रतिज्ञा करता। ये सब तुम्हारी कृपा है माँ। तुम मनमें जरा विचार न करो। यह सब मैंने करवाया है। उस रामायणके अनुसार माँने कहा—बेटा! प्रत्येकसे ऐसा काम मत करवाना। यह बात तो राम और कैकेयीकी गुप्तरूपसे हो गयी। पर आजतकके इतिहास लिखनेवाले समालोचक कैकयीको सब गालियाँ देते हैं। कैकेयीकी तरफ कोई नहीं देखता। पर क्या कैकेयीने रामका बुरा किया? इसी प्रकारसे भगवान्‌की प्रेरणासे न मालूम कब, कौन-सा काम हमारे मंगलके लिये होता है। बुराई दिखायी देती है। मैंने पढ़ा था एक किताबमें। वह अंग्रेजीकी किताब थी ईसाइयोंके संबंध की। एक आदमी था। उस आदमीके ऐसे पाप थे कि उसको सौ दिनतक सूई चुभाई जाय और उसको यह पता न लगे किसलिये सूई चुभाई जा रही है? तो उसके पाप कट जाते हैं। यह बात एक संतको मालूम हुई तो संतने यह बात उसके भाईसे कही। उसके भाईने कहा—यह कड़ा काम मैं कैसे करूँगा। उन्होंने कहा—यदि तुम उसका भला चाहते हो तो करो नहीं तो मत करो। उसको कोढ़ हो रही थी। बोले—कोढ़ दूर हो जायेगी, पाप दूर हो जायेगा। अब भाईसे यह बात बताना नहीं चाहता। संतने कह दिया कि उसको ये बात बता दी जायेगी तो पाप दूर नहीं होगा। रोज भाई उसके सूई चुभावे जोरसे। भाई सूई चुभावे तो उसको बड़ा दर्द हो। दर्द होनेपर पहले-पहले तो जरा रोया-

गाया। फिर वह गाली बकने लगा कि ये हमारा बड़ा बेहूदा भाई है। मुझे मारना चाहता है। जब वो समय पूरा हो गया छः महीनेका और कोढ़ मिटी तो वे संत एक दिन आये। संतने कहा—क्यों? तुम अच्छे हो गये। बोला—अच्छे हो गये। संतने कहा—कैसे अच्छे हो गये? संतने कहा—तुम्हारे भाईने सूई चुभाई थी इससे अच्छे हो गये। वह बोला—मैं तो भाईको वैरी मान रहा था। मैं तो सोच रहा था कि रोग तो अच्छा होना था जो हो गया। इसने तो मेरा उपकार ही किया। कौन जानता है इस बातको। भगवान्‌की किस प्रेरणासे कब क्या विपरीत, प्रतिकूल स्थिति हमारी हो जाती है कोई उसमें निमित्त बनता है वो निमित्त बननेवाला हमारा अपकारी ही है, शत्रु ही है ऐसी बात नहीं। हमारा परम मित्र भी हो सकता है। हमारा परम बान्धव भी हो सकता है।

अगर किसी छोटे बच्चेका ऑपरेशन कराया जाय। हमारे वो एक दोहिता है छोटा तो उसके यहाँपर लग गयी थी चोट। एक डाक्टरको बुलाया। डाक्टरने जरा उसके टाँके-वाँके दिये। उसके बाद अब वो अब तो कुछ बड़ा हो गया तो किसीको देनेवालेको देख ले तो रोने लगता। टाँके दिये थे ना, वो दर्द हुआ। पर अगर कोई बड़ा आदमी हमलोगोंमेंसे ऑपरेशन करवाता है तो क्या सर्जनको गाली देता है? क्या ये समझता है कि सर्जनने हमारा अपकार किया? तमाम एक-एक फीट तक बार-बार नीचे तक घाव कर देता है गहरा ६-६ इंचतक मांस निकालके फेंक देता है। पेट काटकर निकाल देता है। हृदयको निकालके फेंक देता है और हम कहते हैं कि ऑपरेशन सफल हुआ। सफल हुआ है? बोले—हाँ, हो गया। घाव कुछ ज्यादा हो गया? बोले—घाव आदिकी कोई बात नहीं। धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा। ये क्या पता? हमारी मौत आती है हमारे मंगलके लिये। भक्तका ये भाव होना चाहिये भक्त तो प्रत्येक दुःखमें भगवान्‌को देखे—सबसे ऊँची बात तो ये है। उससे नीचे बात ये है कि भगवान्‌का मंगल विधान देखें। उससे नीची बात ये है कि प्रारब्धका फल भोगकर प्रारब्धके ऋणसे मुक्त होते हैं ये देखें, नहीं तो वो दुःखके रूपमें आता कौन है?

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जारों के साथ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें, जग सारेमें॥
रोग-शोक, धन-हानि, दुःख, अपमान घोर, अति दारुण क्लेश।
सबमें तुम, सब ही है तुममें, अथवा सब तुम्हारे ही वेश॥
तुम्हारे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ, तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख-वेष धारणकर, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें, मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ॥

भक्त मानता है—हाँ, तुम अपमान बनके आये हो, तुम प्रहार बनके आये हो, आक्रमण बनके आये हो, मार बनके आये हो—तुम आये हो ना। पहचान लिया तुमने, किसी भेषमें आवो नाथ! तुम्हारी नकाबपोशी है तुम न मालूम कब-कब क्या-क्या स्वांग धरते हो तुम। ये अगर न भाव आवे तो ये भाव करे कि ये नियन्त्रकर्ता जो भगवान् हैं उन भगवान्‌के नियन्त्रणमें सारे विधान होते हैं। भगवान् चूँकि मंगलमय हैं, परम सुहृद् हैं, हमारे अमंगलका विधान वह कर नहीं सकते। सर्वज्ञ हैं उनसे भूल हो नहीं सकती। उनका प्रत्येक विधान हमारे लिये मंगलमय हो इस प्रकारसे वह स्वीकार करे।

न कहीं पर भी शत्रुताको स्थान दे, विरोधको स्थान न दें, जहाँ कहीं ये चीज आ गयी हो जीवनमें, उसको बहुत जल्दी, न मालूम मृत्यु कल ही आ जाय तो मृत्युके पहले-पहले अपने अन्दर से उस विषको निकाल दे और हमारे उस विषके कारणसे जिस किसी दूसरेके अन्दर वो विष भर रहा है चेष्टा करे उसको भी निकालनेकी, नम्रतासे, विनयसे, सेवासे, हितसे, एहसान करके नहीं। न निकले भगवान् मालिक हैं पर अपनी ओरसे मनमें वैर न रखे।

रस-सिद्ध संत श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की जीवन झाँकी

भगवान्‌के 'विशेष कार्य' हेतु १७ सितम्बर १८९२ ई०, दिन शनिवारको आपका जन्म शिलांगमें हुआ। कुल देवता श्रीहनुमानजीकी कृपासे जन्म होनेके कारण आपका नाम 'हनुमानप्रसाद' पड़ा। युवावस्थामें देश-सेवा—समाजसेवाकी प्रवृत्ति प्रबल होनेके कारण स्वदेशी आन्दोलनमें शुद्ध खादी प्रयोगका व्रत ले लिया। आपके क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण शिमलापालमें २१ माहतक नजरबन्द किया गया। बंगालके क्रान्तिकारियों अरविन्द घोष आदिसे आपका निकट सम्पर्क हुआ। १९१८ में आप बम्बई आ गये। वहाँ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, पं०मदनमोहन मालवीय, संगीताचार्य विष्णु दिगम्बरजीसे घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। सभीके द्वारा प्रेमपूर्वक आपको भाई सम्बोधन करनेके कारण आपका उपनाम 'भाईजी' पड़ गया।

श्रीभाईजीमें अपने यश प्रचारका लेश भी नहीं था। इसी कारण उन्होंने 'रायबहादुर', 'सर' एवं 'भारतरत्न' जैसी राजकीय उपाधियोंके प्रस्तावको नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा उनकी अमूल्य हिन्दी-सेवाके सम्मानार्थ प्रदत्त 'साहित्य—वाचस्पति' की उपाधिका अपने नामके साथ कभी प्रयोग नहीं किये। हालाँकि भाईजीकी शिक्षा पारिवारिक, पारम्परिक ही रही लेकिन यह चमत्कार है कि कई भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार था। सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका 'कल्याण' के १९२६ ई०में प्रकाशन प्रारम्भ होनेपर उसके सम्पादनका गुरुतर दायित्व आपने सफलतापूर्वक निर्वाह किया और अपने भगीरथ प्रयत्नोंसे उसे शिखरपर पहुँचाया। उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण'के ४४ विशेषांक अपने विषयके विश्वकोष हैं। हमारे आर्ष ग्रन्थोंको विपुल मात्रामें प्रकाशित करके विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचा दिये जिससे वे सुदीर्घ कालके लिये सुरक्षित हो गये। हिन्दी और सनातन धर्मकी उनकी सेवा युगोंतक लोगोंके लिये प्रेरणाश्रोत रहेगी। उनके द्वारा हिन्दी साहित्यको मौलिक शब्दोंका नया भण्डार मिला। उनकी गद्य-पद्यात्मक रचनायें अपने विषयकी मीलकी पत्थर हैं। श्रीभाईजी द्वारा विरचित १०० से अधिक पुस्तकें अबतक प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें उनके काव्य संग्रह 'पद-रत्नाकर' के अतिरिक्त 'राधा-माधव-चिन्तन', 'प्रेमदर्शन', 'भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर बाललीलायें', 'वेणुगीत', 'रासपञ्चाध्यायी' 'रस और आनन्द' तथा 'प्रेमका स्वरूप' प्रमुख हैं। उनकी कुछ रचनाओंका विश्वकी कई भाषाओंमें अनुवाद हुआ है।

भगवन्नामनिष्ठाके फलस्वरूप वनवेशधारी भगवान् सीतारामके दर्शन हुए तदनन्तर पारसी प्रेतसे साक्षात् वार्तालापके परवर्तीकालमें अनेक दिव्यलोकोंसे सम्पर्क स्थापित किये।

भगवद्दर्शनकी प्रबलोत्कण्ठा होनेपर १९२७ ई० में भगवान् विष्णुने दर्शन देकर उन्हें प्रवृत्तिमार्गमें रहते हुये भगवद्भक्ति तथा भगवन्नाम प्रचारका आदेश दिया। क्रमशः...

दिव्यलोकोंसे सम्पर्कके साथ ही अलक्षित रहकर विश्वभरके आध्यात्मिक गतिविधियोंके नियामक एवं संचालक दिव्य संत-मण्डलमें अन्तर्निवेश हो गया। कृपाशक्तिपर पूर्णतया निर्भर भक्तपर रीझकर भगवान्‌ने समय-समयपर उन्हें श्रीराम, शिव, गीतावक्ता श्रीकृष्ण, श्रीव्रजराजकुमार एवं श्रीराधाकृष्ण दिव्य युगलरूपमें दर्शन देकर तथा अपने स्वरूप तत्त्वका बोध कराकर कृतार्थ किया। १९३६ ई० में गीतावाटिकामें प्रेमभक्तिके आचार्य देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरासे साक्षात्कार हुआ और उनसे प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई। अपने ईष्ट आराध्य रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधा किशोरीकी भाव साधना, स्वरूप चिंतनसे उनकी एकाकार वृत्ति इष्टके साथ प्रगाढ़ होती गयी और वे रसराजके रस-सिन्धुमें निमग्न रहने लगे। भागवती स्थितिमें स्थित होनेसे उनके स्थूल कलेवरमें श्रीराधाकृष्ण युगल नित्य अवस्थित रहकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओंका नियन्त्रण-संचालन करने लगे। सनकादि ऋषियोंसे उनके वार्तालाप अब छिपी बात नहीं है।

भगवत्प्रेरणासे भाईजीने अपने जीवनके बाह्यरूपको अत्यन्त साधारण रखते हुये इस स्थितिमें सबके बीच ७८ वर्ष रहे। कुछ श्रद्धालु प्रेमीजनोंको छोड़कर उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका। जो उनके निकट आये वे अपने भावानुसार इसकी अनुभूति करते रहे। किसीने उन्हें विद्वान् देखा, किसीने सेवा-परायण, किसीने आत्मीय स्नेहदाता, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने सच्चा सन्त, किसीने उच्चकोटिका व्रजप्रेमी और किसीको राधा हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली। किसी संतकी वास्तविक स्थितिका अनुमान लगाना बड़ा कठिन है तथापि भाईजी निश्चित रूपसे उस कोटिके सन्त थे जिनके लिये नारदजीने कहा है—**'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'**—भगवान् और उनके भक्तोंमें भेदका अभाव होता है। श्रीभाईजीकी प्रमुख शिक्षायें हैं—१-सबमें भगवान्‌को देखना (२) भगवत्कृपापर अटूट विश्वास करना और (३)भगवन्नामका अनन्य आश्रय ग्रहण करना।

हमारी भावी पीढ़ियोंको यह विश्वास करनेमें कठिनता होगी कि बीसवीं सदीके आस्थाहीन युगमें जो कार्य कई संस्थायें मिलकर नहीं कर सकतीं वह कल्पनातीत कार्य एक भाईजीसे कैसे सम्भव हुआ। राधाष्टमी महोत्सवका प्रवर्तन और रसाद्वैत—राधाकृष्णके प्रति नयी दिशा एवं मौलिक चिन्तन इस युगको उनकी महान देन है। उनके द्वारा कितने लोग कल्याण पथपर अग्रसर हुये, वे परमधामके अधिकारी बने इसकी गणना सम्भव नहीं है। महाभाव—रसराजके लीलासिन्धुमें सर्वदा लीन रहते हुये २२ मार्च १९७१ को इस धराधामसे अपनी लीलाका संवरण कर लिये।

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्'

आलोक : विस्तृत जानकारीके लिये गीतावाटिका प्रकाशन, गोरखपुरसे प्रकाशित ***'श्रीभाईजी—एक अलौकिक विभूति'*** पुस्तक अवश्य पढ़े।



गीतावाटिका प्रकाशन

पो०-गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३००६
फोन : ०५५१-२२८४७४२, २२८२१८२
e-mail : rasendu@hotmail.com

हमारे प्रकाशन

१. श्रीभाईजी कथामृत	
लेखक-श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी	२००
१. भाईजी पावन स्मरण	३००
(सम्पादक-महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथजी कविराज)	
२.श्रीभाईजी एक अलौकिक विभूति	९०
(पू०भाईजी एवं पू० श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी)	
(संयोजक-श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)	
३. भाईजी चरितामृत	५०
(पू० भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग)	
(संयोजक-श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)	
४. दो अध्यात्मिक विभूतियोंके प्रेरक प्रसंग	२०
(पू० श्रीसेठजी एवं पू० श्रीभाईजीके कुछ संस्मरण)	

पूज्य श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी द्वारा लिखित पुस्तकें

१. भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर बाललीलायें	२५०
२. श्रीरासपञ्चाध्यायी	३५
३. वेणुगीत	३५
४. यज्ञ पत्नियोंपर कृपा	३०
५. प्रभुको आत्मसमर्पण	३०
६. नित्य स्मरणीय अमृत वचन(दैनिक कैलेंडर)	५०
७. समाज किस ओर जा रहा है	३०
८. क्या, क्यों और कैसे	३०
९. रस और आनन्द	३०
१०. प्रेमका स्वरूप	३०
११. साधकोंके पत्र	३०
१२. अन्तरङ्ग वार्तालाप	३०
१३. सरस प्रसंग	३०
१४. सरस पत्र	३०
१५. परमार्थकी पगडंडियाँ	३०
१६. सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	३०
१७. व्रज-भावकी उपासना	२५
१८. श्रीशिव-चिन्तन	२५
१९. श्रीभरत-चरित्र	२५
२०. श्रीदेवी-चिन्तन एवं कुछ उपयोगी मंत्र	२५
२१. पारमार्थिक एवं लौकिक सफलताके सरल उपाय	२५
२२. शान्तिकी सरिता	२०
२३. मेरी अतुल सम्पत्ति	१०
२४. भगवत्कृपा	५
२५. श्रीराधा-जन्माष्टमी व्रत महोत्सव	५
२६. गीति-संग्रह	१५
२७. कालियनागपर कृपा	३०
२८. प्रेम और प्रेमी	३०
२९. सुखी होनेके उपाय	३०
३०. नित्य-उत्सव	३०
३१. मधुरोपासना	३०

पू० भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा सम्पादित पुस्तकें

१. श्रीराधागुणगान	३०
२. भगवन्नाम एवं प्रार्थनाके चमत्कार	३०
३. भगवत्कृपाके अनुभव	३०
४. भगवत्कृपाके चमत्कार	३०
५. योग एवं भक्ति	३०
६. रोगोंके सरल उपचार	३५
७. भारतीय नारी	३०
८. भारतीय संत	३०
९. संत दर्शन	३०
१०. भक्ति रहस्य	३५
(महामहोपाध्याय पं०श्रीगोपीनाथजी कविराज)	
११. भक्त और भगवान	३५
(श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय)	
१२. निश्चिन्त हो रहो	३५
(श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्याल)	
१३. जैसा बीज वैसा फल	३०
१४. व्रज-भाव	३०

नोट : पुस्तकोंके भुगतान हेतु बैंक विवरण :- गीतावाटिका प्रकाशन, खाता सं० 497102010015113, यूनियन बैंक आफ इण्डिया, गीतावाटिका शाखा, गोरखपुर

पू० श्रीराधाबाबाका साहित्य

१. केलीकुंज	७०
२. आस्तिकताकी आधार शिलायें	३५
३. मेरे प्रियतम	३०
४. महाभागा व्रजदेवियाँ	३०
५. परमार्थके सरगम	३०

अन्य साहित्य

१. दिव्य हस्तलिखित संकेत	५०
(पू०सेठजी, पू०भाईजी, पू०स्वामीराम-सुखदासजी एवं पू राधाबाबाके पत्र)	
२. श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव	१०
(संकलनकर्ता—श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी)	
४. पद-रत्नाकर—एक अध्ययन	३०
(लेखक-श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी)	

विशेष प्रकाश : पूज्य श्रीभाईजीके प्रवचनों एवं भजनोंके कैसेट एवं सी०डी० भी उपलब्ध है।

हमारे प्रकाशन एवं कैसेट प्राप्ति के अन्य स्थान

गोरखपुर : श्रीहरिकृष्ण दुजारी पो.- गीतावाटिका (गोरखपुर) फोन- 0551-2284742, 8853145452 (पूज्य श्रीभाईजी के प्रवचनों की सी.डी. भी उपलब्ध है।)

कलकत्ता : (1) श्रीकमलकुमार अग्रवाल, 42 विवेकानन्द रोड, फोन- 033-2272807
(2) श्रीनारायणकुमार दुजारी, डायमंड हाइट, 6th मंजिल, 20/ए. चेतला रोड, फोन- 09830042353

गाजियाबाद : श्रीशिवकुमार दुजारी, के.आई.155 कविनगर, फोन- 9871090029, 8744020029

गुड़गाँव : श्रीकेशव दुजारी, 704 रॉयल प्रेसिडेंसी, सेक्टर 45, फोन- 9560245550, 9999213603

फरीदाबाद : श्रीमोहनलाल दुजारी, मकान 623, सेक्टर 37, फोन- 9810847487

वृन्दावन : खण्डेलवाल एण्ड सन्स, अध खम्भा बाजार, फोन- 0565-2423714

बीकानेर : श्रीगणेशमलजी जालान, 27 खजान्ची मार्केट, फोन- 9460100981